साहित्य यात्रा

साहित्यिक-सांस्कृतिक यात्रा की साक्षी

संपादक

डॉ॰ कलानाथ मिश्र

साहित्य यात्रा
साहित्यिक-सांस्कृतिक यात्रा की साक्षी

संपादक
साहित्य यात्रा

प्रिय महोदय,
'साहित्य यात्रा' के

साहित्य यात्रा विशिष्ट सदस्यता	:	₹ 1100/-
एक वर्ष (4अंक)	:	₹ 300 /- (डाक खर्च सहित)
तीन वर्ष (12 अंक)	:	₹ 750 /- (डाक खर्च सहित)
संस्थागत मूल्य (3 वर्ष)	:	₹ 1100 /-
आजीवन सदस्यता	:	$ 11000 /-
विदेश के लिए (3 वर्ष)	:	60 डॉलर

(पटना के बाहर के चेक पर कृपया बैंक कमीशन के 40/- रुपये अतिरिक्त जोड़ दें।)

उक्त दर के अनुरूप मैं चेक / ड्राफ्ट संलग्न कर रहा हूँ। कृपया मुझे ग्राहक बना कर मेरी प्रति निम्न पते पर भिजवाएँ।

नाम : ....
पता : ....
....
....
....
फोन : ....

चेक/ड्राफ्ट संपादक / प्रसार व्यवस्थापक, **साहित्य यात्रा,** पटना के नाम पर ही बनाएँ और निम्नलिखित पते पर हमें भेजने की कृपा करें :-

आप निम्न खाता विवरण पर ऑन लाइन भी पैसा जमा करा सकते हैं। पैसा जमाकर इसकी सूचना साहित्य यात्रा को अवश्य दें।

बैंक विवरण : पंजाब नेशनल बैंक, ए.एन. कॉलेज, पटना
खाता संख्या : 623000100016263, IFSC Code : PUNB0623600

संपादक
साहित्य यात्रा
ई-112, श्रीकृष्णपुरी, पटना-800001 (बिहार)
फोन : 09835063713/08750483224
ई-मेल : shahityayatra@gmail.com
kalanath@gmail.com
वेब साईट : http:/www.sahityayatra.com

पत्रिका आप साहित्य यात्रा के पते पर मनीऑर्डर भेज कर भी मंगा सकते हैं।

यहाँ से काटिए

साहित्य यात्रा

साहित्यिक-सांस्कृतिक यात्रा की साक्षी

वर्ष-4 अंक-14 जनवरी-मार्च, 2018

परामर्शी

डॉ॰ सूर्य प्रसाद दीक्षित

डॉ॰ श्रीरंजन सूरिदेव

डॉ॰ रामशोभित प्रसाद सिंह

डॉ॰ संजीव मिश्र

सम्पादकीय सलाहकार

श्री आशीष कंधवे

उप-संपादक

प्रो॰ (डॉ॰) प्रतिभा सहाय

सहायक संपादक

डॉ॰ सत्यप्रिय पाण्डेय

डॉ॰ रवीन्द्र पाठक

संपादक

प्रो॰ कलानाथ मिश्र

साहित्य यात्रा में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार एवं दृष्टिकोण संबंधित लेखकों के हैं जिनसे संपादक, प्रकाशक, मुद्रक एवं पत्रिका से जुड़े किसी भी व्यक्ति का सहमत होना अनिवार्य नहीं है। सभी विवादों का निपटारा पटना क्षेत्र के अन्तर्गत सीमित है। पत्रिका में संपादन से जुड़े सभी पद गैर-व्यावसायिक एवं अवैतनिक है।

साहित्य यात्रा

साहित्यिक-सांस्कृतिक यात्रा की साक्षी

RNI No. : BIHHINO5272
ISSN 2349-1906

विश्व विद्यालय अनुदान आयोग द्वारा अनुमोदित

© स्वत्वाधिकार सुरक्षित

प्रकाशित सामग्री के पुनः उपयोग के लिए लेखक,
अनुवादक अथवा **साहित्य यात्रा** की स्वीकृति अनिवार्य है।

संपादकीय कार्यालय
'अभ्युदय'
ई-112, श्रीकृष्णपुरी
पटना-800001 (बिहार)
मोबाइल : 09835063713/08750483224
ई-मेल : sahityayatra@gmail.com
kalanath@gmail.com
वेब साईट : http:/www.sahityayatra.com

मूल्य : ₹ 45

शुल्क दर :	एक वर्ष (4 अंक)	300
	तीन वर्ष (12 अंक)	750
	(डाक खर्च सहित)	
	संस्थागत मूल्य (3 वर्ष)	1100
	आजीवन सदस्यता	11,000
	विदेश के लिए	60 डॉलर (3 वर्ष)

शुल्क **'साहित्य यात्रा'** के नाम पर भेजें।

'साहित्य यात्रा' त्रैमासिक डॉ॰ कलानाथ मिश्र के स्वामित्व में और उनके द्वारा 'अभ्युदय' ई-112, श्रीकृष्णपुरी, पटना-800001, बिहार से प्रकाशित तथा ज्ञान गंगा क्रियेशन्स, पटना से मुद्रित। स्वामी/संपादक/प्रकाशक/मुद्रक : डॉ॰ कलानाथ मिश्र।

अनुक्रम

संपादकीय 07

आलेख

पारिभाषिक शब्दावली-निर्माण और राजनीति विज्ञान 09
बलराम तिवारी

निबंध

साहित्य की सदाशयता 15
जय प्रकाश मानस

आलेख

भरत की सौन्दर्य दृष्टि 19
डॉ. भारतेन्दु मिश्र

साहित्य की राह से गुजरते हुए 23
शरद पगारे

हिन्दी साहित्य में पत्र-पत्रिकाओं के विशेषांकों की प्रासंगकिता एवं उपादेयता 34
कृष्ण वीर सिंह सिकरवार

आलेख

हिन्दी कविता में प्रतिरोध की परम्परा 44
रामचरण पाण्डेय

संस्मरण

भारतीय चिंतन के कवि कुँवर नारायण 50
शिवनारायण

दुनिया का सबसे रूपवान डूबा हुआ आदमी 60
सुशांत सुप्रिय

परम्परागत संचार माध्यमों की चुनौतियाँ 64
प्रो. (डॉ.) रामस्वरूप भगत

समीक्षा

भविष्य के हिन्दुस्तान का राजनैतिक आख्यान रचती कहानियाँ 68
प्रकाश चन्द्र

आलेख

भारतीय समाज में नारियों की दशा एवं दिशा 76
आशा कुमारी

रामकृष्ण परमहंस का आध्यात्मिक चिंतन 81
डॉ. आलोक प्रभात

'विनय पत्रिका' हिन्दी साहित्य का एक अनमोल ग्रंथ 86
वंदना मिश्रा

कविता

मन्त्र विद्ध 90
संदीप जायसवाल

आलेख

डॉ. दयाकृष्ण विजय के काव्य में समन्वयवाद 91
डॉ. यदुवीर सिंह खिरवार

सम्पादकीय

सामाजिक परिवर्तन और साहित्य की चुनौतियाँ

साहित्य में बदलते युग की तस्वीर तो दिखती ही है, साथ ही साहित्य में समय के प्रति समाज को आगाह करने की क्षमता भी निहित है। साहित्य ने समाज को संतुलित मर्यादित करने का पाठ पढ़ाया है और समाज के उत्थान में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। किसी भी काल का सत्साहित्य उस काल के समाज को जागरूक बनाने में बहुत महत्त्वपूर्ण होता है। सामाजिक परिवर्तन में साहित्य की भूमिका निर्णायक होती है, ऐसा कहना कहाँ तक उचित होगा यह नहीं कहा जा सकता किन्तु साहित्य के हस्तक्षेप से सामाजिक परिवर्तन की गति तेज अवश्य हो जाती है। इस बात का प्रमाण हमारे पास मौजूद है। उदाहरण के लिए जब साहित्य में नवजागरण का दौर चल रहा था उसी समय भारत में समाज सुधार आन्दोलन भी चला। उसी अवधि में साहित्य ने उस समय की रूढ़ियों, जड़ताओं, असमानताओं को न केवल उजागर किया बल्कि उसका प्रतिकार भी किया। हाँ यह अवश्य है कि उसका एक हिस्सा पुनरुत्थानवादी था और दूसरा पुरोगामी। किन्तु उसने हस्तक्षेप तो किया ही।

सामाजिक आन्दोलनों को साहित्यकारों ने अपनी लेखनी के माध्यम से गति प्रदान की और स्वाधीनता, समता तथा अस्मिता की चेतना जगाई तथा ' स्वत्त्व निज भारत गहे' का नारा दिया। आज जब समाज में काफी उथल पुथल की स्थिति है, अलग - अलग वर्ग, संगठन, सम्प्रदाय अपनी पृथक अस्मिता और प्रतिष्ठा की माँग कर रहे हैं, ऐसे में साहित्यकार का दायित्व खासा बढ़ जाता है। उसका धर्म है कि वह समाज में सौहार्द और भाईचारे का भाव जगाए (यद्यपि आज तो भाईचारे जैसे शब्द भी प्रश्नांकित हो गए हैं और कहा जा रहा है कि इसके नाम पर हमारे साथ छल किया गया, शोषण किया गया) ऐसे समय में साहित्य की सार्वजनीनता आवश्यक हो जाती है।, अंतिम जन तक उसकी पहुँच का सवाल आवश्यक हो जाता है।

गांधी जी के जंतर का स्मरण करना होगा और विचार करना होगा कि हम जो कदम उठाने जा रहे हैं, उसका लाभ समाज के निचले पायदान पर बैठे व्यक्ति को मिलेगा कि नहीं? यों तो समूचे समाज को एक साथ लेकर चलना आज एक बड़ी चुनौती है। जहां समाज वर्गों, जातियों, सम्प्रदायों में विभक्त हो (और अब तो आने वाले समय में यह भी कहा जाएगा कि बोलियों के आधार पर बंटा हो क्योंकि यह सवाल अभी हाल में ही संसद में उठाया गया कि हिंदी को राष्ट्रभाषा के रूप में नहीं थोपा जा सकता) और हर वर्ग और सम्प्रदाय के अपने अपने स्वार्थ हों, ऐसे में यह चुनौती और भी बड़ी हो जाती है। आज के दौर में साहित्य की भूमिका की बात करें तो सवाल यह उठता है कि क्या आज साहित्य की पहुँच आम जन तक है? क्या वह सार्वजनिक है? क्या साहित्यकार चाटुकारिता, परमुखापेक्षिता से मुक्त है? अहंकार से मुक्त है? यदि नहीं तो वह सामाजिक परिवर्तन में अपनी सकारात्मक भूमिका नहीं निभा सकता है। आज जहाँ दलित, आदिवासी, स्त्री अपने अधिकारों की लड़ाई लड़ रहे हैं, सामाजिक न्याय की गुहार लगा रहे हैं (हालाँकि यह विचारणीय प्रश्न है कि क्या वास्तव में उनका अधिकार खतरे में हैं?) ऐसे में साहित्यकार यदि पुरस्कारों की दौड़ लगा रहे हों, यशलोलुप हों, चाटुकारिता कर रहे हों तो आने वाला कल साहित्य की भूमिका को निश्चित रूप से प्रश्नांकित करेगा और जवाब मांगेगा। साहित्य का स्वभाव ही प्रश्नाकुलता है, अन्याय का प्रतिकार करना है। संसार की पहली कविता शाप के रूप में प्रतिकार ही तो थी जिसमें आदिकवि वाल्मीकि ने कहा था कि 'मां निषाद प्रतिष्ठां, त्वमगम: शास्वती समा:, यत्क्रौंच मिथुनादेकमवधि: काम मोहितं''। जो साहित्य प्रश्न करने का स्वभाव छोड़ देता है, वह नष्ट हो जाता। ऋग्वेद से लेकर अब तक का जो भी श्रेष्ठ प्राप्त साहित्य है, साहित्यकार हैं, वह प्रश्न करने के स्वभाव से युक्त हैं। चाहे तुलसी हों, कबीर हों, सूर हों, कुम्भनदास हों, भारतेंदु हों, निराला हों अथवा प्रेमचंद हों सबने अपने प्रश्नों से अपने समय की जड़ता को तोड़ा है। यों तो आज साहित्य प्रभूत मात्रा में रचा जा रहा है। कविता, कहानी, उपन्यास के अम्बार लगे

हैं, किन्तु सवाल यह है कि इतने लिखे जाने के बावजूद भी आज साहित्य का असर समाज पर उस रूप में क्यों नहीं है? क्या हाल फिलहाल की कोई ऐसी बड़ी रचना है जिसने समाज को विचार विमर्श करने के लिए विवश किया हो? ठहरकर सोचने के लिए मजबूर किया हो? दूसरा महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि जो लिखा जा रहा है उसकी पहुँच कहाँ तक है? लेखक और पाठक के बीच कौ न से गतिरोध हैं? उन्हें देखना समझना आवश्यक है। आज यह भी प्रश्न उठ रहा है कि कोई पाठक साहित्य क्यों पढ़े? साहित्य उसे क्या देगा? आज तमाम तरह के डिजिटल माध्यम उपलब्ध हैं, फिल्में हैं, सोशल मीडिया है, गूगल है वह इन्हें देखता, सुनता है, साहित्य से उसका कोई सरोकार नहीं रहा। अब ऐसे में संकट यह है कि साहित्य की पठनीयता खतरे में है। साहित्य मानव के मस्तिष्क का भोजन है, मनुष्य के चिंतन को शक्ति प्रदान करता है। उसकी वैचारिक चेतना के विकास का सूचक और भावों का आदर्श स्थिति है।

यह भी यच है कि लिखा तो बहुत जा रहा है किन्तु उसका शतांश भी पढ़ा नहीं जा रहा। उसका एक कारण तो यह भी माना जा सकता है कि वह संप्रेष्य नहीं हो रहा है। दूसरा उसको पढ़ने के प्रति पाठकों की रूचि नहीं है। संचार माध्यम के इस युग मे किताब पढ़ना लगभग आदत से बाहर हो रहा है। अब पाठक को ज्ञान नहीं चाहिए, उसे मात्र सूचना चाहिए। वह उसे गूगल पर खोजता है। विभिक सूचनाओं का अम्बार लगा हुआ है वहाँ। युवा विद्यार्थी, पाठक पुस्तकालय जाना छोड़ चुके हैं, वे इन्टरनेट पर किताबें खोजते हैं, और वहीं पढ़ लेते हैं। अभी हाल ही में एक खबर आई थी जिसमें यह चिंता व्यक्त की गई थी कि अगर यही हालत रही तो लोग कागज और कलम भूल जाएँगे। पुस्तकों के स्पर्श की अनुभूति और लिखने से चिंतन की प्रक्रिया सीधे जुड़ी हुई है, लिहाजा लोग चिंतन करना, सोचना, विचारना भी भूलते जा रहे हैं। एक अंधी दौड़ लगी हुई है। जिसमें पता ही नहीं कि सभी क्यों दौड़े जा रहे हैं और उन्हें जाना कहाँ है? ऐसी विकट परिस्थिति में साहित्य को अपनी जगह बचाए रखना और बनाए रखने के लिए अपनी धार पैनी करनी होगी। उसे अपडेट होना होगा। अपने समय और समाज की चिंताओं से जुड़ना होगा और उसका साहित्योचित समाधान भी देना होगा। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने कहा कि साहित्य जनता की चित्तवृत्ति का संचित प्रतिबिंब है। हजारी प्रसाद द्विवेदी ने साहित्य को ज्ञान राशि का संचित कोष कहा है। अत: आज आम जनमानस के बीच सामाजिक राजनीतिक मुद्दों पर रूचि जागृत करना आवश्यक है। क्योंकि एक बार वैचारिक बीज अंकुरित हो जाए तो पूरा का पूरा समाज परिवर्तित हो सकता है, बदल सकता है। बालकृष्ण भट्ट साहित्य को जन समूह के हृदय का विकास मानते हैं। आज कई तरह की सामाजिक, राजनीतिक चेतनाओं के उभार का दौर है, जिसमें बोलियों का उभार , क्षेत्रीयता का उभार, जातीय संगठनों का उभार, प्रांतीयता का उभार शामिल है, जो यह दर्शाता है कि हमारे भारतीय संघीय ढाँचे में कहीं न कहीं दरार आ रही है, उसमें लोच आ रही है, अथवा नई तरह की संरचनाओं के संकेत उत्पन्न हो रहे हैं। ऐसे में साहित्यकार की जवाबदेही और भी बढ़ जाती है। वह समाज को मनुष्यता की गरिमा, समता, और संवेदनशीलता का सन्देश दे और समाज को विश्रृंखलित और असहिष्णु होने से यथासंभव रोके, उसे सही दिशा दिखाए। विचारों ने साहित्य को जन्म दिया और साहित्य ने मनुष्य की विचारधारा को गतिशीलता प्रदान की। उसे सभ्य बनाया। किसी भी राष्ट्र या समाज में जो भी परिवर्तन आए हैं उनमें साहित्य का महती योगदान रहा है। साहित्यकार का दायित्व समाज की विसंगतियों, विकृतियों, विषमताओं को चिन्हित कर उन विसंगतियों का पाटना है। साहित्य, समाज और संसति का रक्षक होता है। साहित्यकार का कार्य मात्र कलम चनाना नहीं, बल्कि समाज के विकास में अपनी भूमिका तय करना और उसका निर्वाह करना भी है। इसके लिए साहित्यकार को सजग रहना होगा, अपने आँख, कान, नाक खोलकर रखने होंगे और उसे एक सजग प्रहरी की तरह चौकन्ना रहना होगा क्योंकि संवेदना को बचाए और बनाए रखना ही साहित्य का चरम और परम धर्म है। संवेदना ही एक ऐसी चीज है जो साहित्य और समाज को जोड़ती है। संवेदनहीन साहित्य समाज को कभी प्रभावित नहीं कर सकता। हमारी कामना है कि साहित्य अपने इस महत्तर उद्देश्य में सफल हो और अपनी सार्थकता को बचाए और बनाए रखे।

इन्हीं शुभकामनाओं सहित–

कलानाथ मिश्र/सत्यप्रिय पाण्डेय

पारिभाषिक शब्दावली-निर्माण और राजनीति विज्ञान

बलराम तिवारी

18वीं-19वीं शताब्दी में जब वैज्ञानिक खोजों की धूम मची थी। तब शोध करने और शोध के बीच भाव को नई पारिभाषिक शब्दावली में बाँधने के कारण वैज्ञानिक ही पारिभाषिक शब्दावली के सर्जक प्रयोगकर्त्ता और मौलिक चिंतन के झंडाबरदार थे। उन्हें तब सावधान किया जाता था कि एक शब्द के कई विकल्प न दे क्योंकि विविधता बहुक्षेत्रीय सम्प्रेषण के लिए समस्या पैदा करती है।

महात्मा गाँधी ने 15 अगस्त 1947 ई0 को बी.बी.सी लन्दन के पत्रकार से कहा था कि ''अंग्रेजी का विकास इसलिए हुआ कि अंग्रेज आगे बढ़े और उन्होंने अपनी भाषा की उन्नति की। यदि हम मातृभाषा की उन्नति नहीं कर सके और हमारा यह सिद्धान्त रहे कि अंग्रेजी के जरिए ही हम अपने ऊँचे विचार प्रकट कर सकते हैं तो इसमें जरा भी शक नहीं कि हम सदा के लिए गुलाम बने रहेंगे।'' गाँधी जी के कथन का अर्थाभास यह है कि किसी भी देश और उसकी भाषा का विकास उसे देश की जनता के बौद्धिक, वैज्ञानिक एवं भौतिक विकास पर निर्भर करता है। आम बोल चाल के माध्यम के रूप में कोई भी भाषा न तो समृद्ध होती है और व दरिद्र। भाषा में समृद्धि उस भाषा के वैज्ञानिक-तकनीकी विकास से आती है। इसके लिए उस देश की महान प्रतिभाएँ अपने मौलिक वैज्ञानिक दार्शनिक चितंन को सम्प्रेष्य बनाने के लिए पारिभाषिक शब्दावलियाँ गढ़ती हैं। मौलिक चिंतन नई शब्दावलियाँ माँगता है, जैसे हर अच्छी पैदावार नये बीज की माँग करती है। नया विचार भाषा के पुराने उपमानों, प्रतीकों में व्यक्त नहीं हो सकता, उसके लिए नये उपमान, नये प्रतीक, नये अर्थव्यंजक शब्द गढ़ने पड़ते हैं। अज्ञेय ने कलँगी बाजरे की (हरी घास पर क्षर भर) में लिखा है।

अगर मैं तुझको/ललाती साँझ के नभ की अकेली तारिका/अब नहीं कहता/या शरद के ओर की नीहार न्हायी कुँई टटकी कली चम्पे की/वगैरह, तो/नहीं कारण कि मेरा हृदय उथला या सुना है/ या कि मेरा प्यार मैला है/बल्कि केवल यही/ये उपमान मैले हो गए

हैं/देवता इन प्रतीकों के कर गये हैं कूच कभी बासन अधिक घिसने से मुलुम्मा छूट जाता है।

न्यूटन ने जब गुरुत्वाकर्षण सिद्धान्त (Theory of gravitation) की खोज की तो अपने नये विचार को रखने के लिए उन्हें Gravitation, speed, velocity, Acceleration जैसे शब्द गढ़कर उन्हें परिभाषित करना पड़ा। अत: स्पष्ट है कि नया चिन्तन नई शब्दावलियाँ लेकर आता है। सबको पता है कि जब गाँधी जी ने सत्याग्रह आन्दोलन छेड़ा तो अनशन, भूख हड़ताल, सविनय अवज्ञा हृदय परिवर्तन, सत्याग्रह जैसे शब्द नये अर्थ के साथ भास्वर हो उठे। नयी परिभाषा में बंधी शब्दावलियाँ ही नये विचार को संचरणशील बनाती है।

18वीं-19वीं शताब्दी में जब वैज्ञानिक खोजों की धूम मची थी। तब शोध करने और शोध के बीच भाव को नई पारिभाषिक शब्दावली में बाँधने के कारण वैज्ञानिक ही पारिभाषिक शब्दावली के सर्जक प्रयोगकर्त्ता और मौलिक चिंतन के झंडाबरदार थे। उन्हें तब सावधान किया जाता था कि एक शब्द के कई विकल्प न दे क्योंकि विविधता बहुक्षेत्रीय सम्प्रेषण के लिए समस्या पैदा करती है।

किसी भी भाषा के विकास और प्रसार के लिए भाषा नियोजन (Language Planning) आवश्यक है। भाषा-नियोजन दो चीजों को जरूरी मानता है - मानवीकरण और आधुनिकीकरण। मानवीकरण यदि माया में संरचनात्मक एकरूपता लाने की प्रक्रिया है तो आधुनिकीकरण (Functional Structural Coherion) प्रकार्यात्मक विविधता लाने की प्रक्रिया। प्रकार्यात्मक विविधता (Functional diverrity) नये-नये ज्ञान को व्यक्त करने के लिए नई-नई शब्दावलियों के निर्माण की अपेक्षा करती है। नामीबिया में भाषा विकास व्यूरी के प्रधान रहे प्रो० रेमण्ड ओहली ने कहा था : "The modernization of African Languages is a matter of Terminologies." अफ्रीकी भाषाओं की ही नहीं किसी भी भाषा की आधुनिकता पारिभाषिक शब्दावली के निर्माण पर आधारित होती है। नई शब्दावलियाँ समाज में उस नये वैचारिक-वैज्ञानिक चिंतन के अस्तित्व में आने का पता देती है। जिससे समाज प्रगति के पथ पर आरूढ़ होता है। अत: समाज के आधुनिकीकरण का परिणाम है - भाषा का आधुनिकीकरण।

कहने की जरूरत नहीं कि भाषा एक ओर ब्राह्मजगत के प्रत्यक्ष ज्ञान से जुड़ी होती है तो दूसरी ओर भाषिक समुदाको चितंन से। एक ओर वह परम्परागत अर्थ-निर्भर सम्प्रेषण व्यवस्था पर भरोसा करती हुई सामाजिक सांस्कृतिक प्रतीकों का प्रयोग करती है, दूसरी ओर वह सामाजक, राजनैतिक, वैज्ञानिक प्रगति की माँग को स्वीकार करती हुई या तो पुराने शब्द पर अर्थ का नया मुलम्मा चढ़ाती है या नया शब्द गढ़ती है। जैसे- बादलों में चमकनेवाली बिजली को विद्युत, तड़ित, दामिनी आदि भी कहते हैं। शब्दावली आयोग ने बिजली और विद्युत शब्द का प्रयोग के अर्थ में किया है। यह परम्परागत सामाजिक-सांस्कृतिक प्रतीक बिजली पर अर्थ का नया मुलम्मा है। अब बिजली या विद्युत् शब्द से Electric Current के लिए विद्युत् धारा, Electric discharge के लिए विद्युत् विसर्जन, Electrification के लिए विद्युतीकरण, Electrician के लिए बिजली मिस्त्री आदि व्युत्पन्न शब्द समाज की प्रगतिमूलक माँग की पूर्त्ति का परिणाम हैं। इससे स्पष्ट है कि पारिभाषिक शब्दावी सामाजिक प्रतीक पर नया अर्थ लादने से भी बनती है। पारिभाषिक शब्दावली बनने से पहले वह शब्द बोल चाल मूलक सम्प्रेषण संस्कृति का अंग था। वह अपने भाषिक समुदाय (Speech Community) के बीच सामाजिक सांस्कृतिक सह जीवन का भोक्ता था। पारिभाषिक

शब्दावली बनते ही वह नया अर्थ देने लगता है तथा विकासमूलक सम्प्रेषण व्यवस्था का अंग बन जाता है। अब सहजीवन वाला शब्द नये अर्थ के साथ नवजीवन का वाचक है। मलेशिया के आशाविद् अलि सहबाना ने दो भाषायी संस्कृतियों की बात की है – एक है एक्सप्रेसिन कल्चर और दूसरी है प्रोग्रेसिन कल्चर। बादलों के बीच चमकनेवाली 'बिजली' का अर्थ संकेत एक्सप्रेसवि कल्चर का अंग है। इसमें अर्थ का नियामक है। धार्मिक सांस्कृतिक चेतना। प्रोग्रेसिव कल्चर में नवीन अर्थाविष्ट शब्दों का पारिभाषिक जीवन सैद्धान्तिक आधार के साथ भौतिक प्रगति और विकास से जुड़ा होता है। अतः Electricity के लिए विद्युत् या Electric discharge के लिए विद्युत विसर्जन प्रोग्रेसिव कल्चर का अंग है।

भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से कोई भी पारिभाषिक इकाई (Termino logical unit) कोशीय इकाई (Lexical unit) से भिन्न नहीं होती है। दोनों की ध्वन्यात्मक (Phonological) शब्द रूपात्मक (Morphological) एवं वाक्यगत विशेषताएँ भी लगभग समान होती हैं लेकिन दोनों में अर्थगत्त और उपयोगिता मूलर भिन्नता अवश्य होती है। कावरे (Cabre) की दृष्टि में पारिभाषिक इकाई विशिष्ट अर्थ देनेवाली इकाई होती है। (Unito of Special meaning) वह यह भी मानता है कि कोई भी कोशीय इकाई पारिभाषिक इकाई बनने की क्षमता से लैस होती है। (Any lexical unit world thus have the potential of being a terminological unit Cabre)।

जो भाषिक समुदाय उर्वर मौलिक संकल्पनाओं से भरा होता है, जो शोद्य करता है, नये विचारों की दुनिया में छलांग लगाता है, वह अपनी भाषा में पारिभाषिक शब्द भी गढ़ता है – किन्तु जो भाषिक समुदाय मौलिक चिंतन नहीं करता और आधुनिक सुविधाओं को भोगने की ललक के कारण टेक्नोलॉजी आयातित करता है, अपनी भाषा शब्द गढ़ने पड़ते हैं। आयातित ज्ञान के साथ आयातित पारिभाषिक शब्द को अनुवाद के सहारे ही लक्ष्य भाषा में पर्यायवाची प्रतिरूपों में बदला जाता है। मुख्तसर यह कि पारिभाषिक शब्दावली वह समाज भी गढ़ता है जो मौलिक शोद्य करता है और वह भी गढ़ता है जो मौथ्लक शोद्य नहीं करता है। मौलिक शोद्य नहीं करनेवालों का शब्दावली निर्माण भाषानतरण का खेल है। इससे पारिभाषिक शब्दों का द्विभाषाी कोश तैयार होता है जबकि मौलिक शोद्यार्थियों का कोश एक भाषी होता है। उसमें शब्दों का अर्थ पर्यायवाची शब्द के रूप में उसी भाषा में दिया जाता है।

हमारे यहाँ राजनीतिक शास्त्र का व्यवहार क्षेत्र अन्य विषयों की तुलना में व्यापक है। उनके पारिभाषिक शब्दों की आवश्यकता और उपयोगिता तो संसद से सड़क तक है। क्योंकि आज की तारीख में राजनीति मानवीय निर्यात का निर्धारक तत्व है। इस देश में राजनीति शास्त्र का इतिहास उतना ही पुराना है, जितना मानविकी का। हमारा महाभारत साहित्य और राजनीति की मिली जुली अन्तर्कशाओं का कोश है। उसमें राजनीतिक अर्थ से गर्भित शास्त्रीय शब्दावलियों की भरमार है। कृष्ण और विदुर की उक्तियों से राजनीति शास्त्र के लिए पारिभाषिक शब्दावलियाँ चुनी जा सकती है। कौटिल्य ने अर्थशास्त्र लिखकर राजनीति को एक व्यवस्थित शास्त्र का रूप दिया। उसमें प्रयुक्त समाहर्त्ता, जनपद, शुल्क, निबंधन, चिकित्सक कर आदि शब्द राजनीतिशास्त्र, लोक प्रशासन आदि के लिए आज भी प्रासंगिक हैं। शब्दावली आयोग ने इनके अधिकांश पारिभाषिक शब्दों को अपनाया है। यह 'अर्थशास्त्र' जिस भाषा में चिंतन उसी भाषाओं के पारिभाषिक शब्दों के लिए अपनी भाषा में प्रतिरूप चुनने का सिलसिला औपनिवेशिक दौर में शुरू हुआ। हिन्दी में पारिभाषिक शब्द गढ़ने की, चिंता भला औपनिवेशिक सरकार को क्यों हो? लेकिन हमारे राष्ट्रवादी

कोशकार अपनी भाषा को स्वायत्त और स्वतिमोर बनाने के लिए निजी तौर पर पारिभाषिक शब्दावली निर्माण में जुटे थे। श्री ब्रजवल्लभ मिश्र ने 1920 ई० में वल्लभ त्रैमाषिक कचहरी कोश लिखकर उर्दू, हिन्दी, अंग्रेजी के बीच अर्थबोध एवं लिपि की बाधा दूर की। उन्होंने पारिभाषिक शब्दों की ने तो परिभाषा दी और न ही पारिभाषिक शब्द निर्माण का कोई सिद्धान्त दिया। उनका उद्देश्य था अरबी-फारसी के शब्दों का अर्थ हिन्दी-अंग्रेजी के पर्यायवाची शब्दों द्वारा प्रस्तुत करना। 'राजनीति शब्दावली' (1927 ई०) शुद्ध रूप से राजनीति शास्त्र से सम्बंधित पारिभाषिक शब्दकोश है। इसे गदाधर प्रसाद अम्बष्ट एवं भगवान दास केला में सम्पादित किया है। इसमें अंग्रेजी शब्दों का तत्सम प्रतिरूप दिया गया है और कुछ की कामचलाऊ परिभाषा भी दी गई है। सन् 1931 ई० में बड़ौदा महाराज के संरक्षण में श्री विष्णु कृष्ण राव धुरन्धर ने श्री सयाजी शासन शब्द कल्पनाएँ नामक पारिभाषिक कोश तैयार किया। इसमें 1929 ई० तक अधिनियमों में आए अंग्रेजी के पारिभाषिक शब्दों के पर्याय इस देश की आठ भाषाओं में दिए गए हैं। यह एक समन्वयात्मक कोशिश है, सन् 1948 ई० में राहुल सांकृव्यायन के सम्पादन में हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग से 'शासन शब्द कोश' प्रकाशित हुआ। इसमें संसद, सचिवालय एवं न्यायालय में प्रयुक्त होनेवाले 1600 शब्दों का पर्यायवाची दिया गया है। जब वैज्ञानिक तकनीकी शब्दावली आयोग अस्तित्व में नहीं आया था- तब प्रातीय सरकारों ने अलग-अलग प्रशासनिक पारिभाषिक कोश तैयार किए थे। बिहार राजकीय प्रशासन शब्दावली (सन् 1955) ऐसा ही कोश है।

पारिभाषिक शब्दों का अर्थ अवधारणात्मक (Conceptual) होता है। ये सुनिश्चित अर्थ प्रेषित करते हैं। ये सबके लिए नहीं होते। ये उन गिने व्यक्तियों के लिए होते हैं जो ज्ञान की किसी एक शाखा में विशेषता प्राप्त करना चाहते हैं। आधुनिक ज्ञान-विज्ञान की लगभग 650 शाखाएँ हैं। इनसे सम्बंधित लगभग 25 लाख शब्द हैं। ये सभी शब्द सबके लिए आवश्यक नहीं है। किसी ज्ञान शाखा से जुड़े लोगों को उन्हीं शब्दों की आवश्यकता है जो शब्द उस ज्ञान शाखा से जुड़े हैं। लेकिन कोई भाषिक समुदाय यदि अपनी भाषा को स्वायत्त बनाना चाहता है उसे हर तरह की अभिव्यंजना में वक्ष बनाना चाहता है तो उसे 25 लाख पारिभाषिक शब्द आत्मसात करने ही होंगे। आत्मसात करने के तीन तरीके हैं : (1) ग्रहण (2) अनुकूलन (3) निर्माण। किसी भी भाषा के पारिभाषिक शब्द को जस का तस अपना लेना ग्रहण है। जैसे- राजनीति शास्त्र में बिल, मिशन, पब्लिक का प्रयोग इनके हिन्दी विकल्प के बावजूद (........, संदेश/जनता) धड़ल्ले से हो रहा है। अनुकूलन का मतलब है- विदेशी पारिभाषिक शब्द में अपनी भाषा की ध्वन्यात्मक एवं व्याकरणिक विशेषताओं के अनुरूप हल्का परिवर्तन करनके अपना लेना। जैसे Guranteed के लिए गारंटित, Guranteed State के लिए गारंटित राज्य, Consular Jurisdiction (वाणिज्यद्त अधिकार क्षेत्र) कांसुली अधिकार क्षेत्र, Parote के लिए परोल अनुकूलित शब्द हैं। या संधि/समास के जरिख नया शब्द बनाना। इसकी भी दो विधियाँ हो सकती है : (1) शब्दश: अनुवाद के जरिए पर्याय-चयन, जैसे ब्लैकमनी के लिए कालाधन, ब्लैक मार्केट के लिए काला बाजार ब्लैक लॉ के लिए काला कानून, Redtapism के लिए लाल फीताशाही आदि शाब्दिक अनुवाद के नमूने हैं (ii) भावात्मक अनुवाद के जरिए शब्द-चयन। Cold pollded murder के लिए नृशंस हत्या भावात्मक अनुवाद है। इसका शाब्दिक अनुवाद होगा- शीत रूधिर हर्त्या जो बिल्कुल गलत है। शैली की दृष्टि से भावात्मक अनुवाद की भी तीन श्रेणियाँ हो सकती है। (1) तत्सम प्रधान शैली प्रेरित अनुवाद : इसमें अनूदित पारिभाषिक शब्द तत्सम शब्द ही होता है। जैसे - Law के लिए विधि। CT के लिए अधिनियम

Regulation के लिए विनियम। (2) तद्भव या देशज शैली प्रेरित, इसमें पर्यायवाची शब्द तद्भव या देशज होता है। Decreasing demand – घटती माँग। (3) अरबी-फारसी शैली प्रेरित। पर्यायवाची शब्द यहाँ अरबी-फारसी से लिए जाते हैं। रिजिग्नेशन के लए इस्तीफा, कोर्ट के लिए अदालत, सेंसस के लिए मर्दुमशुमारी (फारसी)।

सामान्य सम्प्रेषण एवं प्रगति प्रेरित सम्प्रेषण के दबाव में बहुक्षेत्रीय एवं बहुप्रयोगधर्मी भाषा का मानकीकरण दो बार करना पड़ता है। (1) एकबार प्राथमिक स्तर पर जब उच्चारण तथा वर्तनी परक भिन्नता, पर्यायवाची शब्दों की बहुलता एवं व्यापकरणिक रूपों की भिन्नता के कारण किसी भाषा की बहुक्षेत्रीय सम्प्रेषणीयता में बाधा उत्पन्न होने लगती है। दूसरी बार जब पारिभाषिक शब्दों के अनुवाद में विभिन्न स्तर के पाठकों को ध्यान में रखने से पर्यायों में अवेकरूपता आ जाती है। दोनों स्तर पर मानकीकरण का उद्देश्य एक ही होता है – अनेकरूपता में एकरूपता लाना। पारिभाषिक शब्दों का मानकीकरण भी विस्तृत क्षेत्र में प्रयुक्त भाषा की एकरूपता बनाए रखने के तकाजे से किया जाता है। मानकता प्रदान करने में तीन बातें ध्यान में रखनी पड़ती है।

(1) उन पर्यायवाची शब्दों का चयन किया जाना चाहिए जो नये-नये शब्दों को व्युत्पादित करने की योग्यता रखते हैं।

(2) चयनित विकल्पों में अखिल भारतीय रूप की संभावना होनी चाहिए अर्थात् ऐसे शब्द चुने जाएँ जो भारत के अधिकांश हिस्से में समझे जाएं और स्वीकृति पा सकें।

(3) चुना गया पर्याय विश्वविद्यालय के शैक्षिक स्तर के अनुकूल हो। ठनका, बजर, उपर्युक्त तीनों बातों को एक ही उदाहरण से समझा जा सकता है। जैसे – Law के लिए शब्दावली आयोग ने चार शब्दों को चुना है : कानून, विधि, नियम, सिद्धान्त। इनमें विधि शब्द ऐसा है जिसमें नये शब्दों को व्युत्पन्न करने की अपेक्षाकृत सबसे अधिक क्षमता है। विधि से विधिक (Legal), वैधता (Legality), वैधीकरण (Legalisatrion) विधि सम्मत (Legitimatrion) जैसे शब्द आसानी से व्युत्पन्न होते हैं। Law of Nature के लिए प्रकृति-विधि या प्राकृतिक विधि तथा Law of importiality के लिए निष्पक्षता विधि जैसा पर्याय ठीक नहीं जँचता क्योंकि इनमें विधि शब्द का अर्थ न देकर तरीका या डमजीवक का अर्थ दे रहा है। अत: इन शब्दों या ऐसे ही कुछ और शब्दों के लिए क्रमश: 'प्राकृतिक नियम' एवं निष्पक्षता नियम के प्रयोग की छूट मिलनी चाहिए। विधि शब्द चूँकि संस्कृत शब्द है, इसलिए इसमें अखिल भारतीय रूप की भी अर्थच्छाया है और यह कक्षा के शैक्षिक स्तर के भी अनुकूल है।

मानकीकरण की प्रक्रिया चार चरणों में पूरी होती है – चुन, संसजन (Cohesion), प्रयोग और स्वीकृति। पहले तो एक पारिभाषिक शब्द के लिए अपनी भाषा और उसकी बोलियों से कई शब्द चुने जाते हैं। यह हुआ चुनाव। फिर उन शब्दों में अखिल भारतीय रूप की संभावना, शब्द व्युत्पादित करने की योग्यता एवं शैक्षिक स्तर को ध्यान में रखकर एक या दो या अधिक से अधिक तीन शब्दों को रखा जाता है। इसे संसंजन की स्थिति मान सकते हैं। फिर इन शब्दों को प्रयोग के लिए जनता के बीच छोड़ा जाता है। अंतत: सर्वेक्षण के जरिए तय किया जाता है कि जनता ने किस शब्द को सबसे अधिक स्वीकार किया। प्रयोग में सर्वोधिक स्वीकृत शब्द को मानक मान लिया जाता है।

हिन्दी का पाठक वर्ग हिन्दी के पारिभाषिक शब्दों को लेकर मन में खटास पाले हुए हैं।

पारिभाषिक शब्दों के प्रयोग में अगर-मगर करना, बहाने ढूँढ़ना इसका प्रमाण है। राजनीति शास्त्र के विद्यार्थी भी अंग्रेजी के Cultural flexibility, Castomary behaviour Free Convertibility, For feeted आदि तो रट लेते हैं। किंतु इन्हीं शब्दों के हिन्दी प्रतिरूप- क्रमश: सांस्कृतिक नम्यता, प्रथागत व्यवहार निर्बाध परिवर्तनीयता जब्ती पर दुरूहता का आरोप लगाते हैं। हिन्दी प्रयोग में ना नुकर करने की वजह है - अंग्रेजी प्रयोग का खुलापन। हम क्यों समझते हैं कि अंग्रेजी सीखने की चीज है और हिन्दी के पारिभाषिक शब्द तक स्वत: आत्मसात होने की चीज हैं। हम ऐसा क्यों मानते हैं कि हिन्दी हमारे शब्द ज्ञान से फाजिल नहीं है।

पारिभाषिक शब्दावली अध्ययन का पुराना क्षेत्र है। हमारे यहाँ आयुर्वेद, वैदिक गणित, ज्योतिष, चौर शास्त्र, तंत्र, मंत्र आदि के लिए नई-नई शब्दावलियाँ बनती रही हैं। जब भी कोई नया विषय आया, नया कुछ सोचा गया तो पारिभाषिक शब्दावलियाँ भी गढ़ी गई। आज पश्चिमी देशों में पारिभाषिक शब्दावली को ज्ञान की नई शाखा के रूप में विकसित करने का प्रयास किया जा रहा है। इसके सिद्धान्त और शोध-प्रविधि को व्यवस्थित रूप दिया गया है। इन पर वाद-विवाद और विमर्श जारी है ताकि सिद्धांत और शोध-प्रविधि को निर्दोष एवं सर्वा स्वीकृति रूप दिया जा सके। वूस्टर (Wister) ऑस्ट्रिया का भाषा वैज्ञानिक था। उस इंजीनियर के रूप में काम करने का अनुभव था। आधुनिक पारिभाषिक शब्दों के विकास में उसके भाषा वैज्ञानिक कार्य को बहुत महत्व दिया जाता है। उसने 1930 में पीएच.डी. के लिए शोध प्रबंध प्रस्तुत किया था। जिसमें पारिभाषिक शब्दावलि की व्यवस्थित कार्य-विधि, उससे जुड़े कई सिद्धान्त तथा पारिभाषिक शब्दावली मूलक आँकड़े के संसाधन के कुछ मुख्य सूत्र चिहिन्त किए गये थे। General Theory of Terminology and beyond उसके अनुभवों एवं अभ्यासों पर ही आधारित है। इसके मुख्य विंदु हैं -

(1) नियंत्रित पर्यायवाचकता स्वीकृत है।

(2) मानकीकरण के लिहाज से पर्यायवाचकता का परिहार अनुशंसित है।

(3) पारिभाषिक इकाई के अध्ययन के क्रम में शैली, मुहावरे पर भी विचार किया जाना चाहिए।

(4) पारिभाषिक शब्दों के नाम से अधिक अवधारणा को महत्व दिया जाना चाहिए।

(5) पारिभाषिक शब्दों के निर्माण में एकार्थक शब्दों को प्राथमिकता दी जानी चाहिए।

(6) पारिभाषिक शब्दों के नामकरण में संकेत विज्ञान सम्बंधी अवधारणा का प्रयोग किया जाना चाहिए।

वूस्टर के बाद दूसरे व्यक्ति हैं - काबरे (Cabre)। वे पारिभाषिक शब्दावली को एक स्वतंत्र अनुशासन का दर्जा देने की वकालत करते हैं। काबरे का सिद्धांत है। 'Communicative Theory of Terminology' इसके अनुसार प्रत्येक पारिभाषिक शब्द सम्प्रेषण के लिए ही प्रयुक्त होता है, अत: पारिभाषिक शब्दावलियों से बना विशेषीकृत सम्प्रेषण विशेषीकृत ज्ञान को स्थानान्तरित करता है। सम्प्रेषण विशेषज्ञों के बीच, विशेषज्ञों एवं अल्प विशेषज्ञों के बीच तथा विशेषका एवं सीखनेवाले के बीच स्थापित होता है।

✧ ✧ ✧

साहित्य की सदाशयता

जय प्रकाश मानस

साहित्य की पहुँच और साहित्यकार की पहुँच को भी बिलगाकर देखा जाना चाहिए। कवि स्वयं में ब्रह्मसहोदर हो सकता है, उसकी कविता नहीं । यह जो ब्रह्मसहोदर का अहं है वह कई-कई बार कविता की गति को बाधित करने लगता है । ब्रह्मसहोदरता यदि कवि को स्वांतः सुखाय का गुमान देता है तो संभव है वह समाज में रहकर भी ब्रह्म की तरह अनुपस्थित माना जाय । और समाज में कवि की ऐसी उपस्थिति का औचित्य को क्या कहें ? हाँ, उसे आत्मचेतस् भी कह सकते हैं किन्तु समाज में उसकी (साहित्य) उपादेयता का जवाब सिफर भी संभाव्य है ।

निबंध

पिछले दिनों मुझे 70 वर्षीय एक वयोवृद्ध लेखक की चौथी किताब के विमोचन-विमर्श समारोह में वक्ता के रूप में जाना हुआ । उनकी किताब पर समीक्षा लेख पढ़ते वक्त मुझे एक ही भय सताये जा रहा था और चिंता भी यह कि क्या सचमुच साहित्य का प्रभाव अब क्षीण या शून्य हो चुका है जो एक अनुभवी लेखक के आत्मकथ्य को इतना तल्खी से लिखने को विवश कर देता है - ''सैकड़ों वर्ष से लिखा जा रहा है । सैकड़ों हजारों लेखकों द्वारा फटकारा जा रहा है । फिर भी है कि कहीं कोई ऊभ या चुभ नहीं दिखायी देती ।.....

ऐसे कैसे हो सकता है कि साहित्य सामाजिक परिवर्तन का वातावरण न दे सके? क्या साहित्य धर्मच्युत हो चुका है? क्या वह वाग्विलास मात्र है? मनुष्य की यात्रा में हमारे भीतर आज जो कुछ भी है, क्या उसमें साहित्य की कोई हिस्सेदारी नहीं है ? हमारा पृथ्वी को माँ कहना, सूर्य को प्रतिदिन बिलानागा जल रितोना, वृक्ष को देवता कहना, हाड़तोड़ मेहनत के बाद सीधे घर की ओर लौटना क्या साहित्य की उपस्थिति और उसकी प्रेरणा का प्रतिफल नहीं है । क्या साहित्य की इतनी भी उपलब्धि नहीं कि हम ऐसे प्रश्नों को खड़े पा रहे हैं एक सभ्य इंसान बनकर......

मुझे उनके दु:ख में सहभागी होते समय संस्कृत के किसी कवि की कुछ पंक्तियाँ याद आ गई -

एकस्य तिष्ठति कवेगृह एव काव्य -
मनस्य गच्छति सुहृद्भवनानि यावत् ।

इसका आशय है – कुछ ऐसे कवि होते हैं जिनकी पहुँच अपने घर-द्वार तक होती है । कुछ ऐसे भी होते हैं जो अपनी कविताओं को अपने मित्रों तक पहुँचा सकते हैं । इस श्लोक की मीमांसा करें तो बात स्पष्ट हो जाती है कि 'पहुँच' सबसे महत्वपूर्ण चीज है – साहित्य से परिवर्तन में । ऐसे में यह भी क्या स्वाभाविक प्रश्न नहीं होगा कि जब साहित्य लोगों या समाज के मध्य पहुँचेगा ही नहीं तो फिर किस मुँह से उससे परिवर्तन की अपेक्षा रखी जा सकती है ? हम परिवर्तन या सामाजिक परिवर्तन से पूर्व प्रभाव की बात जब करते हैं तो पहले पहुँच का प्रश्न खड़ा होता ही है । जब किसी कवि या रचना की पहुँच ही सार्वजनिक या कारगर नहीं है तो उसका प्रभाव कैसा और क्योंकर सार्वजनिक या कारगर होगा ? जिसकी उपस्थिति श्रवणकर्ता के पड़ोस तक भी नहीं, उसे सुननेवाले क्या स्वर्ग से आयेंगे या स्वत: वे इतनी जादू जानते होंगे कि अपने आप उसके मुखारविंद के सुनने पहुँच जायेंगे । रचनाकार का यह आग्रह रोमानी जरूर हो सकता है पर उतना ही असंभव, फिर कोरे श्रवण और रसग्रहण दो भिन्न स्थितियाँ हैं ।

साहित्य की पहुँच और साहित्यकार की पहुँच को भी बिलगाकर देखा जाना चाहिए । कवि स्वयं में ब्रह्मसहोदर हो सकता है, उसकी कविता नहीं। यह जो ब्रह्मसहोदर का अहं है वह कई-कई बार कविता की गति को बाधित करने लगता है। ब्रह्मसहोदरता यदि कवि को स्वांत: सुखाय का गुमान देता है तो संभव है वह समाज में रहकर भी ब्रह्म की तरह अनुपस्थित माना जाय । और समाज में कवि की ऐसी उपस्थिति का औचित्य को क्या कहें? हाँ, उसे आत्मचेतस् भी कह सकते हैं किन्तु समाज में उसकी (साहित्य) उपादेयता का जवाब सिफरा भी संभाव्य है । साहित्य को ब्रह्मांड तक पहुँचाने के उद्यम से यदि साहित्यकार को परहेज है और वह साहित्य को परिवर्तन की कारकता के रूप में भी देखता है तो उसे यह क्षमता पहले अर्जित करनी होगी, जिससे वह अपने साहित्य में सुर्खाव के पर भी उगा सके । पांडुलिपि से मुद्रित या ध्वनित या चाहे किसी भी रूप में तब्दील हुए बिना साहित्य एकाकी भी है, गोया उसमें समाज केंद्रत: क्यों न हो । बादलों का होना और उसका बरसना अलग-अलग क्रियायें हैं – साहित्य बादल हो सकता है पर उसका बरसना भी जरूरी है । यह जो साहित्यकार की पहुँच है वह बारिश जैसी है, जो तपन का शमन कर दे, चिरई-चिरगुन की व्याकुलता नि:शेष हो जाये, बीज अँकुआ उठे, धरती शस्य श्यामला हो उठे तथा दूर कहीं से आती चिड़िया की चीं-चीं और हलवाहे का गुनगुनाहट में कोई अंतर न रह जाये ।

एक अनुभवजन्य उदाहरण अपरिहार्य होगा। मेरा सौभाग्य है कि मैं एक ऐसे सुप्रसिद्ध कवि, उपन्यासकार के पड़ोस में रहता हूँ, जिस पर समकालीन आलोचना की दुनिया फिदा है । बड़ी-बड़ी (पता नहीं कितनी बड़ी) साहित्यिक पत्रिकाओं के लगभग अंकों में ये शुमार किये जाते हैं । यह एक बात है । दूसरी बात यह भी कि वे अपने पड़ोस में ही साहित्यकार के रूप में नहीं पहचाने जाते न ही इनकी कोई कविता मेरे शहर के किसी गैर साहित्यकार के पास है । वैसे यहाँ भी साहित्य की (पहुँच) दिखाई देती है पर साहित्यकार की शर्त पर । हो सकता है यहाँ निरक्षरता और पाठकीय संभावना और समझ भी प्रश्नांकित न हो। पर यह कैसे हो सकता है कि कोई वैश्विक पहुँच रखता हो किन्तु उसकी जनपदीय पहुँच लगभग शून्य हो? और यह भी नहीं तो इतना जरूर प्रश्नों के घेरे में आ ही जाता है कि क्या साहित्य अपने धर्म से विचलित हो गया है, क्या वह

विशिष्ट वर्गीय यानी कि अभिजात संस्कृति का संवहन में ही आत्ममुग्ध है? क्या यह निहित वर्ग स्वार्थ का संपोषक नहीं है और इस रूप में वह प्रभुता केंद्रित मूल्यों को अपना अनुसमर्थन नहीं दे रहा है ? वाल्टर बेंजामिन शायद ऐसे ही स्थितियों के लिए कह गये हैं - ''सभ्यता का कोई भी ऐसा अभिलेख नहीं है जो साथ ही बर्बरता का अभिलेख न हो।'' तो साहित्य में अभिनवता कारक हो या कुछ और भी, पर साहित्य की 'पहुँच' की एक तस्वीर यह भी है ।

जब हम साहित्य से सामाजिक परिवर्तन और उसके सरोकार की सिद्धि पर विमर्श करते हैं तब हमें यह भी नहीं भूलना चाहिए समाज का क्षेत्र असीमित होता है और प्रभाव्य समय भी अनियत । प्रभुत्वपूर्ण साहित्य वही जो बहुसंख्यक जन को अपने वृत में लपेट ले और यह भी कि वह समय को अतिक्रांत कर शताब्दियों को, सहस्त्रब्दियों को अपनी उपस्थिति से अधिनियमित करता रहे । कबीर, तुलसी, शेक्सपीयर, लियो टालस्टॉय प्रभृति रचनकारों के साहित्य को इसी साहित्य की पहुँच और प्रभाव पर एक रोचक प्रसंग याद आता है । भारत भवन, भोपाल में नई 'कविता की वापसी' पर व्याख्यान था । प्रखर आलोचक नामवर सिंह जी सिद्ध कर रहे थे - नई कविता आ गई, पुन: स्थापित हो कर चारों तरफ छा गई.... । व्याख्यान के पश्चात जाने-माने समाजशास्त्री और विचारक प्रो. श्यामाचरण दुबे को एक वरिष्ठ कवि मिल गये, उन्होंने बताया - ''देखिए, प्रोफेसर साहब, मैं जो कविता लिखता हूँ उसे कुल आठ लोग समझ सकते हैं।''

यह प्रो. दुबे के लिए अचरज भरा था । उनका जिज्ञासा भरा प्रश्न था - ''अगर सिर्फ आठ लोग ही समझ सकते हैं तो उसे छपवाते क्यों है ? कार्बन पेपर लगाइये या टाइप कर दीजिए । अपनी रचना आप कवि सम्मेलन में सुनाते क्यों हैं। अगर आठ ही लोग समझते हैं तो आप अपनी छोटी-सी गोष्ठी अलग कर लीजिए, हमें बोर करने से क्या फायदा ? जब आप जानते ही हैं कि मैं वो समझूँगा ही नहीं तो फिर क्या फायदा ?......''

साहित्य के परिवर्तनकारी क्षमताओं को एकबारगी नकारना जरा कठिन होगा । उसे पूरी तरह खारिज करना मानवीय संवेदना को भी खारिज करने जैसा होगा । साहित्य में जो 'हित' का भाव या भावना है, वह समाज के लिए ही है। समाज निरपेक्ष साहित्य चिरस्थायी नहीं होता। साहित्य का यही चिरस्थायित्व सच्चा और ईमानदार बनाता है । सच्चा साहित्य उदात्त मानवीय सत्ता का व्याकरण है । सच्चे साहित्य के लिए समाज में सदैव आदर्य बना रहता है । और वही आदर्य भाव परिवर्तन के लिए मनुष्य को ऊर्जात्मक प्रेरणा बनता है । दो पंक्तियों के लघुछंद- दोहे में विन्यस्त ऊर्जा के बल पर ही तुलसी भारतीयता की पुनर्स्थापन में सफल होते हैं या कबीर भारतीय समाज की क्षुद्रताओं के खिलाफ उथल-पुथल मचा देते हैं । साहित्य की गंभीर उपस्थिति से विश्व के सारे समाजों में परिवर्तन देखा गया है । वह भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में मुक्तिकामी वाणी रहा है । उसने यूरोप में जातीय स्वातंर्त्य के बीज बोया, व्यक्तिगत स्वतंत्रता के भावों को भी उसी ने पाला-पोसा । उसने पोप की प्रभुता को न्यून किया । फ्रांस में प्रजा की सत्ता का उन्नयन उसी के खाते में जाता है । नतशीश इटली के माथे को किसी ने गर्वोन्नत बनाया तो वह साहित्य ही है । सारे विश्व के मजदूरों, बुर्जूओं, बिचौलियों को नयी सोच और सकारात्मक कदम उठाने के लिए यदि दृष्टि दी है तो उसकी कारकता में मार्क्स और मार्क्सवादी साहित्य ही है । इधर सारे समाज के भीतर दलित अपने संघर्ष

को तेज करने के लिए संगठित हो रहे हैं तो इसमें दुनिया भर के दलितवादी साहित्य का भी कहीं-न-कहीं योगदान है ।

''सामाजिक परिवर्तन का उत्तरदायित्व अकेले साहित्य के कंधो पर नहीं डाला जा सकता ?'' भले ही यह स्वयं में वास्तविकता हो परन्तु ऐसे उद्‌गारों में कामचोर चाकर जैसे मनधारी की लाचारी भी सम्मिलित हो जाया करती है । इस लाचारी को चाहें तो साहित्य की सीमा कह सकते हैं और चाहें तो साहित्यकार की सीमा भी । शायद ऐसी सिचुएशन को ही ध्यान में रखकर कभी कहा गया है, जिसमें साहित्यकार के बहाने साहित्य के प्रभाव का वास्तविक आकलन भी संकेतित है-

सुर सूर तुलसी शशि, उडुगन केशवदास
अब के कवि खद्योत सम, जहँ-तहँ करत प्रकाश

कवि वही जो सूर्य-सा हो । यानी उसकी कविता प्रकाशमय हो । खद्योत कवियों से जहाँ-तहाँ ही उजास बगरायी जा सकती है । संपूर्ण समाज की परिधि पर तमस को छेंकने के लिए कविता का सूर्य-सा होना लाजिमी है । कलाकर्म सहित स्वयं को प्रश्नों के भँवर में देख साहित्यवाले कुतर्क की नाव में सवार होकर बचाव का रास्ता अख्तियार करने लगते हैं- ''साहित्य की विपुल कुनैन के बाद भी समाज मलेरियामुक्त नहीं हो सका तक किस मुँह से पुन: साहित्य में रोग-निदान जैसी आस्था रखें ।'' वे यह भी पूछ सकते हैं- ''क्या धर्मवान भी स्वयं परिवर्तन ला सके?'' क्या दर्शन, राजनीति आदि ज्ञानश्रेणियों ने समाज के निष्कलुष बनाने में सफलता हासिल की ? विमर्श आगे बढ़ाते हुए कदाचित् यह प्रश्न भी उभार दें तो आश्चर्य नहीं कि जवाब-तलब केवल साहित्य से ही क्यों हो? ऐसे समय उनकी ओर से यह उदाहरण भी सुना जा सकता है- ''महाभारतकार ने दोनों हाथ उठाकर कहा था, धर्म के मार्ग पर चलो, पर चले क्या कोई ? जब उनकी बात कोई नहीं सुनता तब मुक्तिबोध या भवानी भाई की आवाज क्योंकर अनसुनी ना हो ।''

साहित्य के पक्ष में जब हम 'वागर्थ प्रतिपत्तये' पर विश्वास करते हैं तो भी हम 'रमणीयार्थ प्रतिपादक: शब्द काव्यम्' जैसे निष्कर्षों के साथ भी अडिग रहते हैं । जाहिर है कि यह जो रमणीयता है, उसकी अनुभूति है, वह एकाकी या अकेले नहीं साहचर्य में संभव होता है । सहमत हुआ जा सकता है कि रमणीयता, साहित्य का सामान्य धर्म है तो वागर्थ की प्रतिपत्ति के रूप में वह सामाजिकता का सृजन भी है । आनन्द कुमार स्वामी तो साहित्य को समाज का अनुवाद ही कहते रहे । साहित्य अनादि काल से सतत् स्वीकृत सत्य और मूल्य की स्थापना, नैरंतर्य की प्रतिष्ठा की चेष्ठा है ।

जयप्रकाश मानस, वरिष्ठ पत्रकार, सम्पादक, लेखक, एफ–3, आवासीय परिसर, छत्तीसगढ़ माध्यमिक शिक्षा मंडल, पेंशनवाड़ा, रायपुर, छत्तीसगढ़–492001, मो.–94241–82664

✧ ✧ ✧

आलेख

भरत की सौन्दर्य दृष्टि

डॉ. भारतेन्दु मिश्र

सर्वोपदेशजनं नाट्यमेतद भविष्यति दुखार्तानामं श्रमार्तानां शोकार्तानां तपस्विनाम।ख्ना.शा. 1ध111, भरत का यह नाट्यशास्त्र अपने आप मे पंचम वेद कहा जाता है। भरत की समन्वय दृष्टि के कारण ही उनका यह ग्रंथ समस्त ललित कलाओ ,शिल्प कलाओ तथा लोक कलाओ की नैसर्गिक विकास यात्रा का प्रमुख दस्तावेज माना जाता है। मंच पर अपनी अपनी भूमिकाओ मे नियुक्त नट-नटी, भरत जाति के हैं। मंच के पीछे नीचे-दाँये-बाँये सब कहीं अपनी छोटी-बड़ी भूमिका निभाने वाले रंगकर्मी वास्तव मे भरत के ही वंशज हैं। अर्थात भरत के रंगमंच पर कोई वर्जना नही है, उनका रंगमंच सबके लिए है।

भरतमुनि के नाट्यशास्त्र मे भारतीय सौन्दर्यशास्त्र के मूल तत्व अपने मौलिक रूप मे विद्यमान हैं। इस दिशा मे डॉं. सुरेन्द्र एस. बारलिंगे, प्रो. के.सी. पांडेय, डॉं. रामविलास शर्मा, डॉं. कमलेशदत्त त्रिपाठी तथा प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी जैसे विद्वानों ने बहुत गम्भीरता से काम किया है। असल मे भारतीय सौन्दर्य परम्परा वैदिक सभ्यता के आविर्भाव के साथ ही विकसित हुई। पाराशर्यशिलालिभ्यामभिक्षुनटॅसूत्र्योरू (अष्टाधयायी) के सन्दर्भ मे डॉं. वासुदेव शरण अग्रवाल कहते है-'आर्ष वांगमय की यह सारी सामग्री इतना ही संकेत दे पाती है कि इस देश मे भरतों की एक परम्परा थी। सम्भवत: इन भरतों या भरत जनों मे से किसी एक विशिष्ट व्यक्ति या पूरे वंश का संबन्ध नटसूत्रों से रहा हो।' (पाणिनि कालीन भारतवर्ष-पृ.315)

अर्थात भरतमुनि का सौन्दर्य चिंतन भी आर्ष परम्परा जितना ही प्राचीन रहा होगा।यह अलग बात है कि भरत की सौन्दर्य दृष्टि किसी एक व्यक्ति, वंश, जाति या किसी सामंत अथवा राजा के नाम से प्रचलित या विकसित नही हुई। भरत की सौन्दर्य चेतना अपने आप मे बहुलता मे व्याप्त भारतीय सामाजिक विकास की गति के साथ ही विकसित हुई है जो आज भी विकासमान है। भरत लोक को ही प्रमाण मानते हैं- तल्लोकप्रमाणम हि विज्ञेयं नाट्यम् ना. शा., शताब्दियो की विकास यात्रा के पुनरीक्षण करने

से ज्ञात होता है कि लोक के आलोक मे ही भारतीय सौन्दर्य चेतना का विकास हुआ है। प्राचीन लोकायत मत और शैवमत ही किसी न किसी रूप मे भारतीय सौन्दर्य दर्शन का मूल हेतु रहा है। सहृदय सामाजिक सदैव भरत के सामने आलोचक के रूप मे बैठा रहा है। लोक मे प्राश्निक भी हैं।

विभिन्न कलाओ के पारखी प्राश्निक अलग- अलग सामाजिक संरचना के साथ दीक्षित -निर्मित हुए हैं। उनके लोक अलग हैं। उनकी मान्यताएँ भी अलग हैं, उनकी कलाओ के सरोकार भी अलग हैं। परंतु वे सब के सब मिलकर एक नाटक की रचना भूमि पर बात करते हैं।यह सब संभव हुआ है भरत के लोकवादी दृष्टिकोण से, क्योंकि भरत के रंगमंच पर स्त्री-पुरुष, राजा रंक, ब्राह्मण-शूद्र, स्वधर्मी-विधर्मी, मूर्ख-विद्वान, दुखी, थके हुए, शोकाकुल, गृहस्थ तथा सन्यासियों सभी का समान रूप से स्वागत है। भरत का रंगमंच है ही इतना सुन्दर कि उसकी ओर सभी खिचे चले जाते हैं।

सर्वोपदेशजनं नाट्यमेतद भविष्यति दुखार्तानामं श्रमार्तानां शोकार्तानां तपस्विनाम। ना.शा. 1ध111, भरत का यह नाटङशास्त्र अपने आप मे पंचम वेद कहा जाता है। भरत की समन्वय दृष्टि के कारण ही उनका यह ग्रंथ समस्त ललित कलाओ ,शिल्प कलाओ तथा लोक कलाओ की नैसर्गिक विकास यात्रा का प्रमुख दस्तावेज माना जाता है। मंच पर अपनी अपनी भूमिकाओ मे नियुक्त नट-नटी,भरत जाति के हैं।मंच के पीछे नीचे-दाँये-बाँये सब कहीं अपनी छोटी-बडी भूमिका निभाने वाले रंगकर्मी वास्तव मे भरत के ही वंशज हैं। अर्थात भरत के रंगमंच पर कोई वर्जना नही है,उनका रंगमंच सबके लिए है।शारदातनय ने भावप्रकाशन नामक अपने ग्रंथ मे नाट्यशास्त्र के दो संस्करणो का उल्लेख किया है, उनके अनुसार भरत कोई एक व्यक्ति विशेष नही है वरन भरत तो एक प्रकार की जाति है जो नाना प्रकार के वर्ण, वेश, विन्यास, भाषा, वय, कर्म और चेष्टा को धाारण करती है। अतः इस रंगजाति के लोग ही भरत कहे जाते होंगे-

भाषावर्णोपकरणैरूनानाप्रकृतिसंभवम्

वेषं वयरूकर्मं चेष्टा विभ्रद भरत उच्यते। भावप्रकाश,

लोक मे व्याप्त जनमानस के समन्वय की ऐसी दृढ संकल्पना भरत या भरतों के सामने अवश्य विद्यमान रही होगी, जिसके आधार पर नाट्यशास्त्र की शताब्दियों पुरानी सौन्दर्य दृष्टि अविकल रूप से भारतीय लोक मानस मे आज भी विद्यमान है। सामाजिक समन्वय की यही चेतना परवर्ती समग्र संत साहित्य मे कबीर-नानक-नामदेव-मीरा आदि की कविताओं मे भी साफ साफ दिखाई देती है।

भरत की सौन्दर्य चेतना की दूसरी सर्वाधिक महत्वपूर्ण विशेषता उनकी रसवादी दृष्टि है। भरत कहते है- यो अर्थो हृदयसंवादी तस्य भावो रसोद्‌भवरू। शरीरं व्याप्ते तेन शुष्कं

काष्ठमिवाग्निना।। ना.शा., कोई वस्तु या व्यति सुन्दर है अथवा उदात्त है यह उस वस्तु के आस्वाद पर निर्भर करेगा। रस आस्वाद होने के साथ-साथ आस्वाद्य भी है। कलाकार को सृजनात्मकता का आनन्द मिलता है और सहृदय या रसिक को साधाारणीकरण की प्रक्रिया मे रसानुभूति का आनन्द मिलता है।वह रस की अनुभूति मनुष्य को आमूल प्रभावित करती है। रसचर्या के क्षणविशेष मे नट और सहृदय सामाजिक दोनो अपनी निजता से ऊपर उठ जाते हैं। भरत की यह रसदृष्टि ही भारतीय मनोविज्ञान की सैद्धांतिकी के रूप मे विकसित हुई। मेरी दृष्टि मे भरत का रससूत्र विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगात रसनिष्पत्तिः, ही भारतीय मनोविज्ञान का पहला सूत्र है। रस का स्थायी भाव, स्थायी भावो के विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भाव आदि की परिकल्पना भरत ने जिस समय की होगी वह न केवल उस समय मौलिक रही होगी, वरन आज भी उस रसदृष्टि को चुनौती देने वाला विश्वसाहित्य मे कोई नही है। भरत की रस चेतना अपने आप मे संपूर्ण है।

शब्द-रूप-रस-स्पर्श-गन्ध के माध्यम से ही मनुष्य किसी द्रव्य की सुन्दरता का आकलन करता है। भरत के रस सिद्धांत मे इन सभी इन्द्रिय बोधों की समग्र चेतना व्याप्त है। सौन्दर्यानुभूति की तीन कोटियाँ है।

1. सौन्दर्य व्यक्ति सापेक्ष होता है-अर्थात किसी व्यक्ति को कोई वस्तु किसी समय मे बहुत सुन्दर लग सकती है ,दूसरे को वही वस्तु सामान्य और तीसरे को वही वस्तु उसी समय मे असुन्दर प्रतीत हो सकती है। इसके मूल मे व्यक्ति की रुचि, मनोदशा या मनोसंरचना ही प्रमुख कारण है।

2. सौन्दर्य काल सापेक्ष होता है-अर्थात किसी व्यक्ति को एक ही वस्तु एक समय विशेष पर बहुत सुन्दर प्रतीत होती है। कुछ समय बाद वही वस्तु सामान्य लगने लगती है और फिर एक समय आता है कि वही वस्तु असुन्दर भी प्रतीत होने लग सकती है।

3. सौन्दर्य स्थिति सापेक्ष है-अर्थात सामाजिक मानसिक परिस्थितियों के आधार पर भी सौन्दर्य की अनुभूति और अभिव्यक्ति मे परिवर्तन देखा जा सकता है। इन सब परिस्थितियों मे मन ही कारण है। क्योकि सौन्दर्य की न्यूनता अधिकता या उदासीनता को मन ही तय करता है। मन मे व्याप्त स्थायी भाव आदि ही तो रसानुभूति के प्रमुख कारक है। कालांतर मे भरत की यही रस चेतना समस्त भारतीय कलाओं को प्रभावित करती हुई आगे बढती है। काव्यशास्त्र के प्रायः सभी।

प्राचीन आचर्यों ने रस को काव्यकला का परमप्रयोजन माना है। काव्य कला के विभिन्न सिद्धांत क्रमशः भामह-अलंकार, वामन-रीति, आनन्दवर्धान-ध्वनि, कुंतक-वक्रोक्ति तथा क्षेमेन्द्र का औचित्य सिद्धांत कही न कही भरत की रसवादी सौन्दर्य चेतना से गहरे तक प्रभावित है। भरत का रस सिद्धांत है ही बहु आयामी खासकर नाटक के सन्दर्भ मे ही भरत रस की तीन अवस्थाओं का संकेत करते हैं एवं रसाश्च भावाश्च त्र्यवस्था नाटके स्मृताः ना.शा.7ध130, भरत के अनुसार रस प्रेक्षक और नट के बीच स्वयमेव रूपांतरित होता है। वह कभी-कभी प्रतीकों के माध्यम से

स्वयमेव स्पन्दित होता है। विभाव-अनुभाव-व्यभिचारी के संयोग से प्रकट हुए स्थायीभाव का रस रूप मे स्वयमेव रूपांतरण हो जाता है। इस रूपांतरण की स्वाभाविक प्रक्रिया मे रस की अभिव्यक्ति भी होती है और अनुभूति भी। वस्तुत: भरत का रस सूत्र ही भारतीय सौन्दर्य दर्शन का केन्द्रबिन्दु है। भरत के अनुसार मंचीय रस आठ है, स्थायी भी आठ है परंतु भावोद्रेक दो ही मनोदशाओ के रूप मे प्रकट होता है और वो है हर्ष या विषाद। हर्षादीन अधिगच्छन्ति-ना.शा. निर्णयसागर-पृ.93,

सृजन की प्रक्रिया तथा आस्वादन की प्रक्रिया दोनो का लक्ष्य रस ही है। भरत के अनुसार रस ही सौन्दर्य है, रस ही आनन्द है, और रस ही ब्रह्म है।

अभिनय, काव्य, संगीत, नृत्य, वास्तु, स्थापत्य, चित्र, आदि सभी ललित कलाओं के माध्यम अलग अलग है किंतु रस की अभिव्यक्ति और अनुभूति सभी कला रूपो मे समान रूप से होती है। नाटक मे तो सभी ललित कलाएँ एकाकार होकर प्रकट होती है। इसी लिए नाटक मे सब प्रकार के प्रेक्षको को अलग-अलग स्तर पर रसानुभूति होती है। यह रसानुभूति की प्रक्रिया नाटक मे बहुत सहज होती है। नाट्क मे कला और शिल्प अर्थात उपयोगी कला रूपो की भी आवश्यकता होती है। नाट्यशास्त्र मे भरत इन सभी की यथा- अवसर चर्चा करते हुए आगे बढते है। भरत की सौन्दर्य दृष्टि से कुछ बचा ही नही है। भरत आगे चलकर नाट्य के संतुलन की बात करते हैं। यह संतुलन ही तो सौन्दर्य की अभिलाषा जगाता है-- एवं गानंच नाट्यच विविधाश्रयम अलातचक्रप्रतिमं कर्तव्यम नाट्ययोक्तभि: । ना.शा.28ध7, क्र.

अर्थात अभिनय, गायन, वाद्य, नृत्य आदि का संतुलन ही रसव्यंजक है। भरत के अनुसार नाट्य के विविध प्रयोगो को अलातचक्र के समान प्रस्तुत करना चाहिए। अलातचक्र का अर्थ है आग का गोला या बनते बिगडते वृत्त जो वास्तव मे कुछ नही होते किंतु पलीता लकडी का दण्ड तथा मदारी के घुमाने का क्रम और इन सब के समन्वय द्वारा ही अलातचक्र की सृष्टि होती है। यह विविधि कलाओं के संतुलन और लोकवादी समन्वय की रूप रेखा ही भरत की सौन्दर्य दृष्टि का मूलतत्व है। ण्से ही कला रूपो के माधयम से रसोद्रेक होता है। संक्षेप मे यही भारतीय सौन्दर्य सिद्धांत की आधार भूमि है।

(http//natyaprasang-blogspot-in)

संपकर्रू- ब्लक्क्क सी45 धवाई-4 ,दिलशाद गार्डन,दिल्ली-110095 ोन-9868031384

✧ ✧ ✧

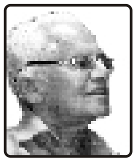

साहित्य की राह से गुजरते हुए

शरद पगारे

श्रीमती पुष्पा भारती एक कार्यक्रम के सिलसिले में इंदौर आई थी। मैंने जब दादा का पड़ोसी होने तथा मेरा विवाह कराने बाबद बताया तो हंसते हुए कहा, ''शरद जी दादा की स्वीकृति के बाद ही भारती जी ने मुझे से विवाह किया। भारती जी ने मुझे स्पष्ट कहा था, ''यदि दादा और उनका परिवार आपको पंसद कर मंजूरी देगा तभी विवाह करूंगा।'' हम लोग खण्डवा आए। चार पांच दिन दादा के यहां रहे। बंबई वापस जाते वक्त दादा ने साड़ी ब्लाउज से स्वीकृति एवं आशीष मिलने के बाद ही भारती जी ने विवाह किया।

व्यक्ति परिवेश, परिस्थिति, समय, वातावरण की उपज है। कभी-कभी एक तीसरी शक्ति जो ईश्वर, उसके द्वारा निर्धारित नियति और समय भी उसके जीवन में अपना रोल निभाते है। यह व्यक्ति तक ही सीमित नही हैं। परिवार, समाज नगर और देश पर भी लागू होता है। वह नगर व्यक्ति की जिन्दगी का निर्धारण कर मोड़ देता है। उसे प्रयत्न करने को उकसाता या निष्क्रिय करता है। मेरे साथ ही नहीं कस्बाई रूपी खण्डवा के साथ भी ऐसा ही हुआ। नगर के सौभाग्य से दादा माखनलाल चतुर्वेदी ने खण्डवा को अपनी कर्मभूमि बनाया। वे इटारसी के पास बाबई-जो अब माखन नगर नाम से विख्यात है--- नौकरी के सिलसिले में खण्डवा आए। खण्डवा की हरी फाटक स्कूल में शिक्षक के रूप में नियुक्त हुए। पिताश्री केवलराम जी उनके छात्र थे। अपने छात्र के कारण हमारे परिवार के दादा से पारिवारिक रिश्ते कायम हुए। जिसने मेरी जिन्दगी को गहरे तक प्रभावित प्रेरित ही नहीं किया उसकी दशा-दिशा भी निर्धारित की।

देश भक्ति, राष्ट्रप्रेम तथा बाल गंगाधर तिलक ने शीघ्र उन्हें नौकरी से त्यागपत्र दे कांग्रेस के आन्दोलन से जोड़ दिया। तिलक से मिले भी। कानपुर में श्री गणेश शंकर जी विद्यार्थी के साथ जुड़ राष्ट्रवादी प्रखर पत्रकार बने। विद्यार्थी जी की शहादत के बाद जबलपुर आ वहाँ से कर्मवीर अखबार निकाल उसे राष्ट्रीय आजादी के आंदोलन का हथियार

बनाया। सेठ गोविन्ददास, द्वारिका प्रसाद मिश्र, सुभद्रा कुमारी चौहान, भवानी भाई तिवारी एवं भवानी मिश्र के प्रेरणा स्रोत बने। पत्रकारिता के साथ दादा की साहित्यिक सृजनात्मक ऊर्जा ने सारस्वत साधना के कारण जबलपुर को संस्कारधानी का विरुद मिला जो आज भी कायम है।

दैहिक रूप से दादा जबलपुर में थे लेकिन आत्मा खण्डवा में ही थी। मेरे जीवन को मोड़ देने के लिए नियति दादा को खण्डवा ले आई। कर्मवीर समेत खण्डवा आ बसे। कर्मवीर खण्डवा से निकलने लगा। उनकी सारस्वत साधना ने खण्डवा को साहित्यिक संस्कार ही नहीं दिए उसे साहित्य तीर्थ बनाया। वे खण्डवा की पहचान और परिचय बन गए। उनके कारण नगर में साहित्यिक वातावरण कायम हुआ।

खण्डवा दिल्ली, मुम्बई, कलकत्ता, मालवा से जुड़ा था। अत: इन महानगरों को जाने आने वाले देश प्रसिद्ध साहित्यकारों को खण्डवा से गुजरना पड़ता था और साहित्य देवता के उपासक दादा के दर्शन, सानिध्य, साहित्यिक चर्चा एवं मार्गदर्शन, आशीर्वाद लिए बिना उनकी उपस्थिति को अनदेखा करना संभव नहीं था। अत: वे आते जाते समय दो चार दिन के लिए दादा का आतिथ्य स्वीकार कर स्वयं को धन्य मानते थे। इनमें से साहित्य के कुछ सितारे तो दो चार दिन नहीं दो चार माह दादा के यहां टिकते थे। इनमें हरिकृष्ण प्रेमी, रामवृक्ष बेनीपुरी, रोमांटिक उपन्यास गुनाहो का देवता, अंधायुग जैसी श्रेष्ठ कृति के सर्जक एवं धर्मयुग के यशस्वी सम्पादक डॉ. धर्मवीर भारती खण्डवा में महीनों रह कर्मवीर के सम्पादकीय विभाग में दादा के मार्ग दर्शन में पत्रकारिता के पाठ सीखते थे। मैंने स्वयं उन्हें देखा मिला हूँ। हमारा घर कर्मवीर प्रेस की गली में ही था। प्रेस चार मकान बाद था। भारती जी द्वारा लिखे सम्पादकीयों को सुधारना, संशोधित कर दादा उन्हें प्रशिक्षित करते। 'साले' दादा का प्रिय शब्द था। भारती जी के सम्पादकीय की त्रुटियों पर दादा बड़े प्यार से डाँटते, ''साले ये क्या लिख लाए?, इसे ऐसा लिखो।''

श्रीमती पुष्पा भारती एक कार्यक्रम के सिलसिले में इंदौर आई थी। मैंने जब दादा का पड़ोसी होने तथा मेरा विवाह कराने बाबद बताया तो हंसते हुए कहा, ''शरदजी दादा की स्वीकृति के बाद ही भारती जी ने मुझे से विवाह किया। भारतीजी ने मुझे स्पष्ट कहा था, ''यदि दादा और उनका परिवार आपको पसंद कर मंजूरी देगा तभी विवाह करूँगा।'' हम लोग खण्डवा आए। चार पाँच दिन दादा के यहां रहे। बंबई वापस जाते वक्त दादा ने साड़ी ब्लाउज से स्वीकृति एवं आशीष मिलने के बाद ही भारतीजी ने विवाह किया।

अतिथि साहित्यकारों के आने पर दादा के यहाँ दो चार दिन, सप्ताह, पन्द्रह दिन ठहरने पर दादा नगर के स्कूलों, माणिक्य स्मारक वाचनालय जो साहित्यिक गतिविधियाँ का केन्द्र था। उनका कार्यक्रम, कविता पाठ, भाषण उभरती प्रतिभाओं से रचना पाठ कराते। अज्ञेयजी ने अपनी 'स्मृति लेखा' में लिखा है, ''दादा की सबसे बड़ी विशेषता युवतर पीढ़ी के निर्माण में थी।'' खण्डवा में दादा की उपस्थिति में रचनापाठ कर एवं आशीर्वाद प्राप्त कर बड़े-से-बड़ा देशप्रिय प्रसिद्ध रचनाकार स्वयं को धन्य मानता था। इनमें धर्मवीर भारती, गिरजा कुमार माथुर, दिनकर जी,

विरेन्द्र मिश्र, शिवमंगल सिंह सुमन, सुभद्रा कुमारी चौहान, भवानी भाई मिश्र, रामवृक्ष बेनीपुरी, हरिकृष्ण, प्रेमी कितने नाम गिनाउ उल्लेखनीय थे। भारती जी के प्रति दादा के मन-आत्मा में विशेष अनुकम्पा, अपनत्व, स्नेह ममत्व था। भारती जी से मिलते ही दादा का गोरा गुलाबी चुम्बकीय मुख वात्सल्य, ममता, अपत्य प्रेम से आलोकित हो जगमगाने लगता था। दादा के कोई संतान नहीं थी। छोटे भाई श्री ब्रजभूषण जी बहू ब्रजरानी ने संतान बन दादा की जीवन की अंतिम सांस तक पुत्रवत सेवा की। चेहरे पर शिकन तक न आने दी। यदि ब्रजबाबू दादा के अनुज पुत्र थे तो भारती जी मेरे अनुमान से दादा के मानस पुत्र थे।

श्रीमती शिवरानी प्रेमचंद ने अपनी संस्मराणत्मक पुस्तक ''प्रेमचंद घर में'' लिखा है 'गोदान के फिल्म बनने के अवसर पर हम लोग बम्बई गए थे। वापस जाते समय प्रेमचंदजी दादा माखनलालजी के साथ साहित्यिक चर्चा हेतु खण्डवा उतर गए। हम लोग कुछ दिन खण्डवा दादा के यहाँ रहे। सारे परिवार ने प्रेम पूर्वक स्नेह स्वागत किया। खण्डवा में साहित्यिक आयोजन दादा ने आयोजित किए। एक संस्मरण प्रस्तुत करना उचित होगा। हिन्दी को सशक्त हस्ताक्षर एवं खूब लड़ी मर्दानी वो तो झांसी वाली रानी थी की लेखिका श्रीमती सुभद्रा कुमारी चौहान बहू बन खण्डवा आई थी। उनके जेठ श्री उमराव सिंह जी चौहान खण्डवा नगरपालिका द्वारा संचालित मेन हिन्दी प्राईमरी स्कूल में हेड मास्टर थे। उनके अनुज लक्ष्मण सिंह जी चौहान से सुभद्रा जी ब्याही थी। बहु बन खण्डवा आने पर लक्ष्मण सिंह जी व सुभद्रा जी दादा का आशीष लेने गए थे। लक्ष्मण सिंह जी बी. ए., एल.एल.बी. थे। वकालत उनकी खण्डवा में जमी नहीं। तब दादा के परामर्श पर वे जबलपुर, जा बसे। दादा के कारण उन्हें सेठ गोविन्द दास, द्वारिका प्रसाद मिश्र का सहयोग-समर्थन मिला।

खण्डवा के इस साहित्यिक माहौल को अधिक मजबूती देने के लिए दादा ने श्रावण मास में सप्तमी के दिन से अगले तीन दिवसीय तुलसी पुण्यतिथि उत्सव का आयोजन आरंभ किया। यह तीन दिवसीय उत्सव खण्डवा की शिक्षण संस्थाओं की नई पौध को साहित्यिक संस्कार प्रदान करता था। तीन दिवसीय कार्यक्रमों का स्थल नगर के मुख्य स्थान पर बना माणिक्य स्मारक वाचनालय तीन दिनी कार्यक्रमों में ''विद्यार्थियों की वाद विवाद प्रतियोगिताएँ रामचरितमानस के विभिन्न प्रसंगों का स्मरण पठन-गायन तथा अतिथि विद्वानों के मानस पर प्रवचन। कवि सम्मेलन तीन दिनी उत्सव का सिरमौर कार्यक्रम होता था। देशभर के देशप्रसिद्ध महाकवि आमंत्रित किए जाते। हमने सर्व श्री रामधारी सिंह दिनकर, डॉ. शिवमंगलसिंह 'सुमन', गिरिजा कुमार जी माथुर, विरेन्द्र मिश्र, डॉ. धर्मवीर भारती, भवानी प्रसाद तिवारी, बालकृष्ण शर्मा नवीन, डॉ. श्याम सुन्दर व्यास, भवानी भाई मिश्र, हरिकृष्ण प्रेमी, रामवृक्ष बेनीपुरी, कुंजबिहारी पाण्डेय आदि प्रमुख थे। कवि सम्मेलन दादा की अध्यक्षता में आयोजित होता। दादा के सामने काव्यपाठ कर उनका आशीर्वाद पाने प्रत्येक कवि ललायित उत्सुक रहता। माहौल बनाने को स्थानीय कवियों - भूरी भाई मिश्र टेलर, अक्षय भाई जैन, श्री बलराम पगारे तथा शिक्षण संस्थाओं के छात्र कवि अपनी रचनाएँ पेश करते।

एक रात्रि कवि सम्मेलन के पूर्व प्रात: दादा के बड़ाबम निवास के कमरे में कविगण उपस्थित हो साहित्यिक चर्चा करते। कमरे के बरामदे में बैठ उन-दिग्गजों के दर्शन, हास्य-विनोद, चुहुल का आनंद लेते हम मित्र एकत्र होते। कवियों को जिन होटलों में ठहराया जाता वहां उनकी सुख-सुविधा, उन्हें वाचनालय ले जाने लाने का काम मुझे व अन्य साहित्य - प्रेमी, वालंटियर्स के जिम्मे रहता। यह मेरे लिए सौभाग्य का विषय था। साहित्य के सितारों की सेवा का अवसर स्मरणीय है।

गिरिजा कुमार जी माथुर मध्यप्रदेश के गुना के थे। सुदर्शन, गौरववर्णीय मुख। सामान्य दरमियानी हाइट, टाई, तीन पीस सूट से सुसज्जित देह। मधुरवाणी, संवेदनाओं, से ओतप्रोत कविताओं का कोमलकान्त मधुरवाणी में प्रस्तुतीकरण ने उन्हें दादा का प्रिय कवि बना दिया। दादा माथुर जी को कोमल सुकुमार, भावनाओं का राजकुमार कहा करते थे। दादा के दूसरे प्रिय रचनाकारों में डॉ. शिवमंगल सिंह 'सुमन', डॉ. श्याम सुन्दर व्यास और बड़नगर के हास्यकवि श्री कुंज बिहारी पाण्डेय थे।

एक साल के कवि सम्मेलन में दिनकर जी, माथुर जी, विरेन्द्र मिश्र, सुमन जी, कुंजबिहारी पाण्डेय आमंत्रित थे। उस साल सागर विश्वविद्यालय के वाईस चांसलर डॉ. राम प्रसाद जी त्रिपाठी, श्री नीलकंठेश्वर कॉलेज जो एस.एन. कॉलेज के नाम से जाना जाता था का इन्स्पेक्शन करने आए थे। दिन कॉलेज में बिताने के बाद दादा से भेंट हेतु दादा के निवास पर आए। डॉ. ईश्वरी प्रसाद के बाद डॉ. त्रिपाठी इतिहास के दिग्गज विद्वान थे। रिसर्चर्स भी मानते थे। केम्ब्रिज और ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालयों के अध्यापन हेतु विजिटिंग प्रोफेसर के रूप में पढ़ाने गए थे।

देश प्रसिद्ध कवियों के जमावड़े को सुनने उनके प्रति आदर-भक्ति प्रगट करने शहर उमड़ पड़ा। माणिक वाचनालय तो समय से पहले ठसाठस भरा ही बाहर के बरामदों, सामने की टेरेस के साथ बाम्बे बाजार की सड़क भर गई। ट्राफिक पुलिस को यातायात मोड़ने श्रोताओं को संभालने में चौकस रहना पड़ा। मंच कवियों के व्यक्तित्व से जगमग था। दिनकर जी, सुमन जी, माथुर जी, विरेन्द्र मिश्र, सुदर्शन थे। उनके व्यक्तित्व के चुम्बकीय व्यक्तित्व से श्रोता बंधे थे। दादा के साथ डॉ. त्रिपाठी भी मंच पर विराजे। हॉल में पिन ड्राप शांति पसरी थी।

दादा ने माईक संभाला, ''मेरे स्नेही कवि मित्रों, खण्डवा के मेरे साहित्य प्रेमियों की ओर से मैं डाक्टर साहब से निवेदन करूँगा कि काव्य पाठ प्रारंभ होने के पूर्व अपने व्याख्यान से हमे उपकृत करें।''

डॉ. त्रिपाठी की पर्सनालिटी अत्यंत ही मनोहारी चुम्बकीय और आकर्षक थी। गोरी गुलाबी रंगत, टाई-सूट से सजी चुम्बकीय देह। ड्रिंक के सरूर से चमकता मुख, बड़ी-बड़ी आँखे। पान से रचित अधर। घुटने मोड़ के बैठ गए और माईक को पास ले पकड़ लिया।

''दादा माखनलालजी का आदेश सर आँखों पर। कवि तो हूँ नहीं। इतिहास का अध्येता हूँ। अत: बात इतिहास की करूँगा। रीति काल हिन्दी साहित्य का स्वर्ण युग है।'' हाल में सन्नाटा

पसर गया। दादा की ही नहीं मंच की उत्सुक नजरे त्रिपाठी जी पर जा टीकी। हॉल भी चौक गया। भक्तिकाल को सामान्य रूप से स्वर्णयुग की मान्यता मिली है। डाक्टर साहब ये क्या बोल गए। अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के विद्वान को टोकने का साहस दादा में भी नहीं था। डॉ. त्रिपाठी बिहारी, धनानंद, रसलीन आदि की कविताओं के उदाहरणों के साथ तर्क सम्मत साहित्यिक भाषा के धारा प्रवाह जो भाषण दिया वह अद्वितीय, अतुलनीय ही नहीं न भुलाए जाने वाला अविस्मरणीय अनुभव बन मंचासीन हिन्दी आकाश के चमकते सितारे जिनकी एक झलक पाने को उनके प्रशंसक उतावले रहते थे चकित स्तब्ध थे। डॉ. त्रिपाठी का आर्कषण चुम्बकीय व्यक्तित्व हिन्दी और विषय पर पकड़ अद्‌भुत प्रशंसनीय करंट से उद्वेलित था, लगता था डॉ. त्रिपाठी के भाषण रूप में हॉल की वायु में सरस्वती की वीणा करंट रूप में झंकृत हो रही थी। मंत्रमुग्ध करने वाली वक्तृत्व कला ने सभी को मोहित कर बांध लिया एक डेढ़ घंटा कब बीत गया पता नहीं चला। भाषण की समाप्ति के बाद भी अधिक सुनने की प्यास बची रही। कुछ पल स्तब्ध सन्नाटा पसरा रहा। फिर तालियों की गड़गड़ाहट से कक्ष ही नहीं बरामदे, टैरेस और सड़क के श्रोताओं ने डॉ. त्रिपाठी का अभिनंदन अभिवंदन किया। अभिभूत दादा खड़े हुए, 'डॉक्टर साहब आजतक आपके ज्ञान की गरिमा की प्रशंसा ही सुनी थी आज व्यक्तिगत अनुभव भी पा लिया।' उन्होने डॉ. त्रिपाठी को गले लगा लिया। ताली बजी अभिवादन किया। खड़े हो हॉल में भी ताली बजी स्टेडिंग ओवेशन से प्रणाम किया। वो दृश्य आज भी स्मृति में सजीव जीवित है।

कवि सम्मेलन का दौर आरंभ हुआ। प्रत्येक ने दादा को प्रणाम कर श्रेष्ठ कविताएँ पेश कर हॉल का दिल जीतने लगे। दिनकर जी ने जो रोमांटिक कविता सुनाई पेश है। गीत अगीत कौन सुन्दर है दो प्रेमी है यहाँ एक जब बड़े साँझ आल्हा गाता है। पहला स्वर उसकी राधा को घर से वहाँ खींच लाता है चोरी-चोरी खड़ी नीम की छाया में छिप कर सुनती है हुई न क्यो कड़ी गीत की विधनायो मन में गुनती है गाता वह पर बड़े वेग से धड़क रहा इसका अंतर है गीत अगीत कौन सुन्दर है।

राष्ट्रकवि, क्रान्ती चेतना के रूमानी, प्रेम रस से पगे गीत ने अभिभूत कर दिया। कवि सम्मेलन की समाप्ति के बाद निवेदन करने पर पीठ थपथपाते दिनकर जी ने पूछा, ''आप को कविता इतनी पसंद आई?''

''सर। मानवीय संवेदना की मौन अभिव्यक्ति की सर्वश्रेष्ठ अभिव्यक्ति है।''

उन्होंने कविता लिख दी। उक्त कविता के द्वारा उन्होंने अपनी लोकमान्य लोकप्रिय कविता तैतीस कोटि सिंहासन खाली करो कि जनता आती है प्रस्तुत कर तालियाँ बटोरी। ग्वालियर के विरेन्द्र जी मिश्र ने मेरा देश है ये मुझको प्यार इससे सुना श्रोताओं का दिल जीत लिया। गिरिजा कुमार माथुर जी ने भी तीन चार कविताएँ प्रस्तुत की। डॉ. शिवमंगल सिंह जी ने दो तीन मुक्त के बाद मैं कालिदास की शेष कथा कहता हूँ के बाद जल रहे हैं दीप जलती है जवानी बड़े लटके झटके और अभिनय के साथ श्रोताओं को परोसी। डॉ. सुमन का अत्यंत ही प्रभावशाली व्यक्तित्व

था। गोरा गुलाबी मुख के भरे-भरे कपोल, छितराई केश राशि। सूट-टाई से सजी काया। सुमन जी पीने के शौकिन थे। खण्डवा के किसी प्रेमी ने सम्मेलन आरंभ होने के पहले प्रबंध कर दिया था। अत: आंखों से झरता सरूर और नशीली आवाज में जल रहे हैं दीप जलती है जवानी पूरे अभिनय से पेश की। और सम्मेलन लूट लिया। वैसे भी दादा के समान सुमनजी के प्रति खण्डवा के मन में विशेष प्रेम था। साल में दो चार बार आया करते थे। ढ़ाई तीन बजे तक लोग जमे रहते। सम्मेलन की समाप्ति के बाद मुझ वालंटियर को दिनकर जी, वीरेन्द्र जी मिश्र, कुंजबिहारी पाण्डे जी को होटल ले जाना था। रास्ते में सम्मेलन पर चर्चा होने लगी। सभी ने मुक्त कंठ से डॉ. रामप्रसाद त्रिपाठी के भाषण की प्रशंसा की।

''सच में भाई डॉक्टर साहब ने रीतिकाल पर नई दिशा बताई है।''

'उनकी विद्वता के कारण ही अंग्रेजों ने पढ़ाने बुलाया'?

''बड़ी चोटी के विद्वान हैं।''

'दिनकर जी आपकी गीत अगीत कौन सुन्दर है प्यार की नई संवेदना पेश करता है?'' गिरिजा कुमार माथुर ने प्रशंसा की।

''और सब तो ठीक है। ये सुमनवा को लिंगभेद का भी ज्ञान नहीं? जल रहे हैं दीप जलती है जवानी में मक्का महमहाता है, गेहूँ गह गहाता है। अरे भई मक्का स्त्रीलिंग है। मक्का महमहाती है होना चाहिए।''

'दिनकर जी तुक मिलाने के चक्कर में सुमन जी लिंग भूल गए।' वीरेन्द्र मिश्र ने स्पष्ट किया।

बड़ों की बड़ी बाते मौन सुनता रहा। होटल पहुँच उन्हें उनके कमरों में आराम करने छोड़ आया।

दादा द्वारा खण्डवा में सृजित सारस्वत साहित्यिक माहौल एवं परिवेश का मेरे किशोर मन ही नहीं यौवन की दहलीज के पहले पायदान पर खड़े मन को गहरे तक अमिट प्रभाव छोड़ा। अनुभव कर रहा था वाणी के सरस्वती के वरद पुत्रों के प्रति समाज में श्रद्धेय आदर ही नहीं पूजा भाव भी है। मैं भी उनमें से एक हूँ। कार्यक्रम की समाप्ति के बाद चरण स्पर्श प्रणाम करते देखा है। उन दिनों प्राईमरी स्कूलों में भी वाचनालय थे। स्कूल की दीवारों पर वहाँ मैथिलीशरण गुप्त की देशप्रेम संबंधी कविताएँ लिखी रहती थी। बचपन की दद्दा की दो पंक्तियाँ आज भी आत्मा मन पर टंकी है -

'जो भरा नही है भावों से,

बहती जिसमें रसधार नहीं।

वो हृदय नहीं है पत्थर है,

जिसमें स्वदेश का प्यार नहीं।।'

स्कूल के वाचनालय से गज्जू-गम्प्पू की कहानियाँ पढ़ने को मिली। मिडिल-हाईस्कूल के वाचनालय ने प्रेमचंद के सेवासदन, गोदान कहानियां से परिचित कराया। अज्ञेय जी की 'शेखर एक जीवनी', सुदर्शन जी जैनेन्द्र के त्यागपत्र, सुनीता को कैसे भूल सकता हूँ। कल्याण में प्रकाशित श्री चक्र की कथाएँ और सर्वोपरि श्री भैरव प्रसाद गुप्त के रोमांटिक, रोमांचक, रोचक, प्यार से सराबोर उपन्यास, इलाचन्द्र जोशी, भगवती चरणजी वर्मा के टेढ़े मेढ़े रास्ते, चित्रलेखा यशपाल जी का झूठा सच, दादा कामरेड, वृन्दावन लाल जी वर्मा का माधवराव सिंधिया, झाँसी की रानी गढ़कुण्डार विराटा की पद्मिनी तथा आचार्य चतुर सेन शास्त्री जी का वैशाली की नगरवधू तथा रावण को नायक बना वयं रक्षाम:, रांगेय राघव का 'मृतको का टीला' ने उपन्यास लेखन की नई विधा से गहरे तक प्रभावित किया। कॉलेज में श्री कन्हैयालाल माणिक लाल मुंशी जी के जय सोमनाथ, राजाधिराज पाटन का प्रभुत्व तथा रमणलाल बसंतलाल देसाई के उपन्यासो ने जिस ऐतिहासिक रोमांस, वैभवशाली शान-ओ-शौकत से रोमांटिक रस से सराबोर उपन्यास परोसे उसने इतिहास ने नए पहलू को मेरे सामने उजागर किया। इतिहास में उपयोग भी हो सकता है। इसे गहरा किया एस. एन. कॉलेज, खण्डवा के वाचनालय ने। जहाँ मैंने शेक्सपीयर के नाटकों जुलियस सीजर, हेमलेट रोमियो-जूलिएट, मेकबेथ ने अभिभूत किया।

कॉलेज में प्रसिद्ध उपन्यासकार थामस हार्डी का मेअर ऑफ केस्टर ब्रिज कोर्स में था। उसे पढ़ने के बाद साहित्य द्वारा मानवीय व्यवहार की सुसंगतियों एवं विसंगतियों, आत्मा की हलचल, मनोवैज्ञानिक विकृतियों, हार्ड द्वारा मानवीय जीवन के क्रियाकलापों में भाग्य या नियति के हस्तक्षेप का विवेचन गहरे तक प्रभावित कर गया। तब मैंने हिन्दी, गुजराती, मराठी, तमिल बांग्ला, कन्नड़, उड़िया, मलयालम ही नहीं फ्रेंच, रूसी और इटालियन साहित्य की ओर रूख किया। मानवीय क्रिया कलापों, नारी पुरूष संबंधों की गहरी पड़ताल इन विश्व प्रसिद्ध कथाकारों ने की। जीवन में सेक्स के महत्व पर केन्द्रित डी.एच.लारेंस का बहुचर्चित, बहुविवादास्पद एवं साठ के दशक में प्रकाशित एवं भारत समेत अधिकांश देशों में प्रतिबंधित उपन्यास लेडी चटर्ली ने तहलका और धूम मचा दी। पवित्रता वादियों ने सेक्स के महत्व को नकारने की असफल कोशिश की। वे भूल गए कि सेक्स बिना नवसृजन, जीवन संभव नहीं।

फ्रेंच इतिहास साहित्य, सांस्कृतिक चेतना और सभ्यता, शिष्टाचार की मान्यता के साथ सारे यूरोप ने अनुकरण किया। ऐमिल जोला के पात्रों की जीवन के प्रति तीव्र आसक्ति, बालजाक, मोपासा जियापालसात्र पात्र के अस्तित्ववाद, मेडम सिमोन द बोवा की सेकेण्ड सेक्स क्रांतिकारी विचारोत्तजक कृतियाँ थी। इन दोनों ने दुनियाभर के साहित्यिक जगत में उथल-पुथल मचा दी। महात्मा गांधी के प्रेरणा स्रोत रूस ही नहीं दुनिया के महान कथाकार टॉलस्टॉय के अन्नाकेरेनिन्ना ने चचंल नारी मन की गहरे तक जांच पड़ताल की वही वार एण्ड पीस ऐतिहासिक उपन्यास के क्षेत्र में मील का पत्थर साबित हुआ। एन्टन चेखव, तुगीनेव दस्ताएवस्की की रचनाओं में नारी पुरुष के प्यार घृणा का जो संसार चित्रित हुआ है अद्भुत है। मेक्सिम गोर्की की मदर सर्वयुगीन मातृत्व की श्रेष्ठता का दस्तावेज है।

इटालियन उपन्यासकार अलबर्टो मोराबिया के दो नारियाँ, वूमन ऑफ रोम, द लाई (झूठ) ने दो विश्वयुद्धों में टूटे धार्मिक, नैतिक मूल्यों को जहाँ उघेड़ा वही द लाय (झूठ) ने मानव खासकर नारी जीवन की मानसिक विकृतियों की गहरे तक पड़ताल की। टेल ऑफ टू सीटिज के श्रेष्ठ रचनाकार चार्ल्स डिकिन्स, स्टीफेंसज्वींग के मेरी अन्त्वायनेत, मेरी क्वीन ऑफ स्कॉट, ऐतिहासिक उपन्यासकार वृन्दावनलाल जी वर्मा, चतुरसेन शास्त्री, रांगेय राघव, राहुल सांकृत्यन की ऐतिहासिक कृतियों के आगे की कड़ी है। स्टीफेन ज्वींग ने जहाँ राजसी वैभव विलास, यौन जिन्दगी तथा नारी मन (मेरी अन्त्वायनेस एवं मेरी क्वीन ऑफ स्काट) के जरिए का विश्लेषण किया है वह अद्‌भुत है। सम्राज्ञी, शासिका भी पहले औरत है। हर नारी के समान उसकी जिन्दगी भी प्यार घृणा, महत्वाकांक्षा से ग्रस्त है। राजसी बंधनों के बावजूद नारियोचित कमजोरियों से वह परे नहीं है। ये मानवीय गुण स्पष्ट निष्पक्ष रूप से विश्लेषित किए गए। नैतिकता की आड़ में उन्हें दबाने छिपाने का प्रयत्न नहीं किया गया। इसी कारण यूरोप के ये साहित्यकार आल टाइम ग्रेट है। इनकी रचनाओं ने उन्हें इतिहासजयी बनाया है। यूरोपियन ही नहीं अमरीकन कथाकार जॉनस्टीन बेक की नई शैली के व्हेली ऑफ टीअर्स में पेश की। एक गाँव के हर घर की कहानी को इस प्रकार जोड़ा कि वह उपन्यास बन गया। यूरोपीय कथा साहित्य को प्रथम और द्वितीय विश्व युद्ध ने गहरे तक प्रभावित किया। युद्ध ने जिस प्रकार धार्मिक और नैतिक मूल्यों को लहू लुहान किया उसकी अभिव्यक्ति अलबर्टो मोराबिया के उपन्यास टू वूमन में गहरे तक रेखांकित हुई है। एक संकलन स्टोरिज फ्राम द वार नाम से प्रकाशित हुआ है। उसमें भी मानवीय रिश्तों, नैतिक मूल्यों की जो विश्लेषणात्मक जाँच परख की गई वह चौकाने वाली है।

बांग्ला के कथा शिल्पियों का अलग से उल्लेख कर रहा हूँ। इनके हिन्दी अनुवाद उपलब्ध है। एक पाठक और लेखक रूप में इनके प्रभाव से अछूता नहीं रहा हूँ। विश्व गुरु रविन्द्रनाथ टैगोर का गोरा, शरतचट्टोपाध्याय के उपन्यासों में मानव चरित्र का जो विवेचन है वह अद्‌भुत है। एक स्थान पर वे लिखते हैं, ''मैंने सती में वैश्या के और वैश्या में सती के दर्शन किए हैं।'' नारी जिन्दगी की नंगी सच्चाईयों से रू-ब-रू करता है। आशापूर्णा देवी ताराशंकर बंधोपाध्याय शंकर, विमल मित्र बांग्ला के साथ हिन्दी के भी प्रेरक कथाकार बने हैं। लेखन के साथ ही विश्व साहित्य में उथल-पुथल मचाने वाले लेखकों का अध्ययन, परिपक्वता तो देता ही मानवीय क्रियाकलापों के अनछुए पहलुओं को भी उदघाटित करता है।

इन्दौर। पुण्य श्लोका प्रातः स्मरणीय देवी आहिल्या बाई होलकर की पुण्य नगरी। महाराजा तुकोजीराव द्वितीय की विलास नगरी। शिक्षा, साहित्य, व्यापार - उद्योग, स्वास्थ्य की नगरी। निमाड - मालवा के गाँवों, कस्बों, शहरों के सपनों का नगर। मेरी शैक्षणिक साहित्यिक यात्रा का अगला पड़ाव था। एस.एन. कॉलेज में सिर्फ बी.ए. तक की अधूरी व्यवस्था थी। एल.एल.बी. अथवा एम.ए. डिग्री पाने के लिए जबलपुर, नागपुर अथवा इन्दौर जाना जरूरी था। इन्दौर खण्डवा के निकट था। वहां होल्कर कॉलेज तथा क्रिश्चियन कॉलेज जैसे प्रतिष्ठित शिक्षण संस्थान थे। खण्डवा विशेषकर दादा के मानसपुत्र डॉ. शिवमंगलसिंह जी सुमन होल्कर कॉलेज में हिन्दी के

विभागाध्यक्ष थे। इन्दौर से जागरण, इन्दौर समाचार, नई दुनिया, नवभारत जैसे प्रांत प्रसिद्ध अखबार रविवार को साहित्य परिशिष्ट प्रकाशित करते थे। देश प्रसिद्ध श्री मध्य भारत हिन्दी साहित्य समिति वीणा नामक मासिक पत्रिका प्रकाशित करती थी। अत:साहित्यिक वातावरण ही नहीं था रचनाओं के प्रकाशन की व्यवस्था भी थी।

दादा के अलावा खण्डवा में शाजापुर के प्रसिद्ध कवि, सुवक्ता प्रभाग चन्द्र शर्मा आ बसे थे। यदि दादा कर्मवीर साप्ताहिक प्रकाशित कर रहे थे तो प्रभाग भाई अगामी कल। खण्डवा के बड़ाबम क्षेत्र के कवि भूरी भाई टेलर, श्री प्रताप भाई सिन्हा, श्री अक्षयकुमार जैन की वहाँ बैठक थी। प्रभाग भाई के कारण उनके अभिन्न मित्र राष्ट्रकवि श्री बालकृष्ण शर्मा नवीन जी का खण्डवा आना जाना रहता था। इस प्रकार खण्डवा में साहित्य के दोनों केन्द्रों का आशीर्वाद एवं मार्गदर्शन मुझे मिला। मेरे इन्दौर पहुँचने के पहले प्रताप भाई सिन्हा, उनके अनुज ओम भाई सिन्हा इन्दौर जागरण के सम्पादकीय विभाग में दादा के पक्के शिष्य प्रधान सम्पादक ईश्वर चन्द्र जैन के साथ काम कर रहे थे। सन 1956 में मालवा हाउस रेसीडेंसी में आकाशवाणी केन्द्र के खुलने के साथ प्रभाग भाई भी प्रोग्राम प्रोडयूसर बन इन्दौर आ गए। दादा, प्रभाग भाई के अलावा पंडित रामनारायण उपाध्याय निमाडी लोक साहित्य के प्रखर अध्येता, रिसर्चर ने निमाडी भाषा, बोली निमाडी के लोकगीतों, कथा-वार्ताओं, लोकनाट्य निमाडी व्याकरण, निमाड की लोक परंपराओं पर अनेक पुस्तकें लिख प्रकाशित करा देश भर के शीर्ष लेखकों की स्नेह मैत्री प्राप्त कर ली थी। अपनी प्रसिद्ध कृति निमाडी का सांस्कृतिक इतिहास में निमाड के जिन लेखकों को उल्लेख किया था उनमें मुझे भी शामिल कर लिया। जबकि उन दिनों में कलम पकड़ना सीख रहा था। डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल, डॉ. भगवत शरण उपाध्याय देश के चोटी के लेखक उनके पत्र मित्र एवं प्रशंसक थे। उनके और प्रभाग भाई के सद्प्रयत्नों से आकाशवाणी इन्दौर, निमाडी मालवी के प्रसारण आंरभ हुए तथा निमाड के निमाडी कवियों को अभिव्यक्ति एवं पहचान का मंच मिला। मैं भी उनमें से एक था।

इन्दौर में प्रसिद्ध कथाकार वीणा के सम्पादक डॉ. श्यामसुन्दर व्यास, नई दुनिया सम्पादक बाबा राहुल बारपुते तथा उभरते कथाकार रमेश बख्शी, व्यंग्यकार शरद जोशी, कवि चन्द्रकांत देवताले, हिन्दी गजल एवं कविता के उन्नायक भाई चन्द्रसेन विराट, डॉ. सुमन की प्रिय शिष्या एवं कवयित्री मालती दीघे (विवाह के बाद मालती जोशी) सुमन जी मालती की कविताओं से गहरे तक प्रभावित थे। उभरती प्रतिभाओं को सँवारने में मन से आशीर्वाद ही नहीं देते थे सुधार, संशोधन कर योग्य परामर्श देते थे। अनेक कवि सम्मेलनों में सुमन जी पुत्री एवं प्रिय शिष्या मालती को ले जाने लगे। उसे मंच प्रदान कर स्थापित किया। बाद में मालती जी देशमान्य हिन्दी की कथाकार के रूप में स्थापित हुई।

खण्डवा में दादा की कृपा से प्रवासी साहित्यकारों के कारण साहित्यिक वातावरण और मिला। इसने मेरी आत्म-मन में साहित्य विशेष कर कथा साहित्य के प्रति अनुराग तो प्रगट किया ही लेखन हेतु प्रेरित किया। मन में लेखन का बीजारोपण हुआ। इन्दौर के साहित्य सर्जकों की मैत्री,

सानिध्य एवं नगर में आयोजित होने वाली साहित्यिक गोष्ठियों में भागीदारी होने लगी। इनमें शरद जोशी, चन्द्रकांत देवताले, रमेश बख्शी आदि रहते थे। इन साहित्य साधकों के सानिध्य ने इन बीजों को सींचा ही नहीं इन्दौर से प्रकाशित लोकप्रिय समाचार पत्रों-जागरण, इन्दौर समाचार, नई दुनियाँ, नवभारत जैसे दैनिकों और हिन्दी की सन् 1927 में महात्मा गांधी द्वारा स्थापित हिन्दी की इतिहास की मान्य संस्था श्री मध्यभारत हिन्दी साहित्य समिति द्वारा सन 1927 से प्रकाशन आरंभ करने वाली मासिक पत्रिका वीणा ने मेरी कहानियों और इतिहास संबंधी रोचक लेखों को प्रकाशित कर पुष्पित एवं पल्लवित किया।

इन्दौर के मजदूर संघ द्वारा जागरण श्रम शिविर से प्रकाशित होता था। दादा के शिष्य श्री ईश्वर चन्द्र जैन सम्पादक थे। खण्डवा के आदरणीय प्रताप भाई सिन्हा और उनके अनुज मेरे अग्रज ओम सिन्हा जागरण का रविवारीय साहित्यिक पेज देखते थे। रमेश बख्शी उनके सहयोगी थे। मेरी कहानियाँ सम्पादित हो प्रकाशित होने लगी। एक सप्ताह रमेश की कहानी और अगले सप्ताह मेरी कहानी छपती। जागरण के कारण रमेश से मित्रता ही नहीं हुई हम अभिन्न बन गए। अपने जूनी इंदौर के घर में कई बार ले गया। वन विभाग में सर्वेअर उसके पिता अच्छे ज्योतिष थे। उनका और रमेश की मां का स्नेह भाजन बना। रमेश के पिता अक्सर मुझे कहते, 'देखना शरद जी रमेश एक दिन देश प्रसिद्ध लेखक बनेगा। देश भर के लेखकों में अग्रणी।' इसमें कोई संदेह नहीं उनकी भविष्यवाणी सही सिद्ध हुई। ज्ञानोदय का सम्पादक बना। नई कहानी के तिलंगो राजेन्द्र यादव, मोहन राकेश और कमलेश्वर उसकी प्रतिभा के सामने दोयम दर्जे के थे। उसकी शराब खोरी और असामयिक देहावसान ने जो जगह खाली की उसपर ये तिकड़ी कायम हो गई। रमेश के पिता भी उसके भाग्य के उन अंकों को नही पढ़ पाए कि काली साँवली प्रेम से विवाह के बाद रोमांटिक नेचर के रमेश के जीवन में कलकत्ता जा ज्ञानोदय का सम्पादक बनने के बाद जो उथल-पुथल मचेगी वह ट्रेजेडी में समाप्त होगी। उसकी चर्चा आगे।

रमेश क्रिश्चियन कॉलेज में हिन्दी का छात्र था। दुबली पतली गेहूँ रंग की इकहरी काया। चश्मे से सजी बड़ी-बड़ी आँखे, गौरवर्णी गेहुआ रंग, दरम्यानी हाइट। ऊचाई में मेरे से एकाध इंच छोटा था। खादी का कुर्ता, खादी की जेकेट, पेंट और चप्पल। कंधे पर टंगे झोले में कुछ किताबें। हम दोनों घनिष्ठ मित्र बन गए थे। इससे मिलने जागरण कार्यालय ही नहीं उसके घर भी आना जाना लगा रहता। नि:संकोच स्वीकार करूँगा जागरण के खण्डवा के ओम भाई सिन्हा का मार्ग दर्शन मिलता रहता। चूँकि मैं इतिहास में एम.ए. कर रहा था। अत: इतिहास के रोचक रोमांचक घटनाओं, चरित्रों की खास कर इतिहास के अल्पज्ञान पात्रों, विशेषकर पात्रियों, रूपसियों की जानकारी तथा इतिहास के प्रणय प्रसंगों जिन्हें इतिहासकार महत्वहीन मानते थे उनकी भी जानकारी थी। जब कहानियाँ नहीं लिख रहा होता इतिहास के इन रूमानी प्रसंगों पर कलम चला लेता। आगे चलकर इन अल्पज्ञान हसीनाओं को महानायिका बना ऐतिहासिक उपन्यास लिख श्री वृन्दावनलालजी वर्मा, आचार्य चन्द्रसेन शास्त्री जी ने जहाँ छोड़ा था उसे आगे बढ़ाया।

जागरण, वीणा के बाद रमेश की कहानियाँ साप्ताहिक हिन्दुस्तान, ज्ञानोदय, धर्मयुग आदि देशप्रसिद्ध मेगजीन आदि में छपने लगी। सन् 1956 में इन्दौर में आकाशवाणी मालवा हाउस में आरंभ हुआ। रमेश बख्शी और शरद जोशी आकाशवाणी में नौकरी करने लगे। जहाँ मध्यप्रदेश के मालवा निमाड अंचल के राष्ट्रीय पहचान के लेखकों कवियों से मिलना होने लगा। डॉ. रघुवीर सिंह, महाराजकुमार सीतामउ, डॉ. शिवमंगल सिंह सुमन, डॉ. भगवत शरण उपाध्याय, दादा माखन लाल चतुर्वेदी, बाल कवि बैरागी, मालवी की प्रखर गायिका पुखराज पाण्डेय आमंत्रित होते। निमाडी लोकगीतों के लिए श्रीमती कुसुम बिल्लौरे, सुमन बिल्लौरे, सरला बिल्लौरे की पार्टी आमंत्रित होती थी। श्री भीकाजी बिल्लौरे, संस्कृत के कालिदास, भास, भवमूसि पर प्रसारण हेतु बुलाए जाते। वे दादा के अभिन्न मित्र थे। इन्दौर के अत्यंत ही प्रतिष्ठित। दादा ही नहीं दद्धा मैथिलीशरण गुप्त, महादेवी वर्मा, डॉ. सुमन आदि के आदरणीय थे। बाबू गुलाबराय अपनी रचनाओं की प्रकाशन के पूर्व पड़ताल जरूर करा लेते थे। मैं गवाह हूँ। दादा के आदरणीय अभिन्न थे। दादा की सिफारिश पर बिल्लौरे साहब की तीसरी बेटी सुमन मेरी पत्नी बनी। प्रकरण इसलिए लिखा कि रमेश मुझे छेड़ता था, ''यार शरद। तेरी बीबी सुमन मेरी गर्लफ्रेण्ड है। निमाडी लोकगीत के प्रसारण हेतु जब भी आती मेरे साथ बैठ कम्पीयर करती। मैं हंसी मजाक कर लेता।''

'मुझे कोई आपत्ति नहीं। तेरे जैसे देश प्रसिद्ध कहानीकार की मित्रता हम दोनों के लिए गर्व की बात है।

एम.ए. हिन्दी में प्रथम श्रेणी हासिल करने पर रमेश मध्यप्रदेश उच्च शिक्षा विभाग के हमीदिया कॉलेज के प्रोफेसर बन भोपाल आया। इतिहास में मैंने भी आगरा विश्वविद्यालय में टॉप किया। पहले मेरी नियुक्ति गर्वमेन्ट कॉलेज महु में हुई। फिर मेरा भी स्थानातंरण हमीदिया कॉलेज में हुआ। सौभाग्य से मैं रमेश शरद जोशी भी पहले आकाशवाणी में रहे। वे भी निमाडी लोकगीतों में कम्पीयरिंग में बिल्लौरे पार्टी को मदद देते थे। मेरे अभिन्न थे। उनकी चर्चा आगे अलग से। वे सूचना विभाग में पदस्थ हो भोपाल आ गए। नार्थ टी.टी. नगर हम तीनों पड़ोसी थे। कहानीकार, उपन्यासकार के रूप में रमेश ने कथा संसार में पहचान बना ली थी। पत्नी प्रेमा, पिता माँ साथ थें। प्राय: प्रतिदिन साहित्यिक चर्चा होती थी। हमीदिया कॉलेज में भी साथ।

उन्हीं दिनों ज्ञानोदय की संस्थापक श्रीमती रमा जैन ने रमेश को ज्ञानोदय के सम्पादक के लिए आमंत्रित किया। रमेश ने मुझे पत्र बताया। मैं चौका ईर्ष्या मिश्रित प्रसन्नता से बधाई दी।

'क्या तय किया तुमने रमेश?'

'यार मैं इस्तीफा दे ज्ञानोदय का सम्पादक बनने कलकत्ता जा रहा हूँ। और वो कलकत्ता सपरिवार चला गया।'

डॉ. शरद पगारे, सुमन कुंज, 110 स्नेह नगर नवलखा, इन्दौर – 452001
मो. : 0731–2467561, 9406857388

✧ ✧ ✧

हिन्दी साहित्य में पत्र-पत्रिकाओं के विशेषांकों की प्रासंगकिता एवं उपादेयता

कृष्ण वीर सिंह सिकरवार

'प्रभा' पत्रिका- इस पत्रिका का प्रकाशन वर्ष 1913 में खण्डवा से प्रारंभ हुआ था। इसका प्रकाशन श्रीयुत कालूरामजी गंगरोठ के संपादकत्व में 'रिव्यू ऑफ रिव्यू' पत्रिका के आदर्श को अपनाते हुए किया था। बाद में इस पत्रिका का प्रकाशन कानपुर से प्रारंभ हुआ जिसके संपादक मंडल में पंडित बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' एवं पंडित माखनलाल चतुर्वेदी भी जुड़ गए थे। द्विवेदी युग के लगभग सभी प्रमुख लेखकों जैसे-सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, इलाचन्द्र जोशी, देवदत्त शर्मा, पंडित बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', पंडित माखनलाल चतुर्वेदी आदि के लेख पत्रिका में प्रमुख रूप से छपते थे।

वर्ष 1921 के बाद हिंदी पत्रकारिता का समसमयिक युग आरंभ होता है। इसी समय के लगभग हिंदी का प्रवेश विश्वविद्यालयों में हुआ और कुछ ऐसे कृति संपादक सामने आए जो अंग्रेजी की पत्रकारिता से पूर्णत: परिचित थे और जो हिंदी पत्रों को अंग्रेजी, मराठी और बँगला के पत्रों के समकक्ष लाना चाहते थे। फलत: साहित्यिक पत्रकारिता में एक नए युग का सूत्रपात हुआ। इस युग में जिन साहित्यिक पत्रों का साहित्य जगत् में पर्दापण हुआ उनमें प्रमुख है- 'प्रभा' (1913), 'स्वार्थ' (1922), 'माधुरी', 'मर्यादा' एवं 'चाँद' (1923), 'मनोरमा', 'समालोचक' (1924), 'चित्रपट' (1925), 'कल्याण' (1926), 'सुधा' (1927), 'विशाल भारत', 'त्यागभूमि' (1928), 'गंगा' (1930), 'विश्वमित्र' (1933), 'रूपाभ', 'साहित्य संदेश' (1938), 'कमला' (1939), 'मधुकर', 'जीवनसाहित्य' (1940), 'विश्वभारती', 'संगम' (1942), 'कुमार' (1944), 'नया साहित्य', 'पारिजात' (1945), 'हिमालय' (1946), आदि। अगर इन पत्रिकाओं के इतिहास पर नजर डाले तो हम पाते हैं कि इनमें से अधिकांश पत्रिकाएँ पाठकों के बीच अत्यंत लोकप्रिय रही थी। इस कारण पत्रिकाओं के संपादक समय-समय पर विभिन्न-विभिन्न विषयों एवं लोकप्रिय लेखकों पर पत्रिकाओं के विशेषांक प्रकाशित करवाते रहते थे, यह विशेषांक पाठकों के बीच अपनी धारदार सामग्री के कारण बेहद लोकप्रिय भी होते थे। फलत: कई पत्रिकाएँ ऐसी थी जिनके

प्रकाशित विशेषांक आज किसी ऐतिहासिक दस्तावेज से कम नही है। उनमें प्रकाशित सामग्री आज भी ओजपूर्ण एवं धारदार है। प्रस्तुत आलेख में विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं द्वारा समय-समय पर प्रकाशित किए गए प्रमुख-प्रमुख विशेषांको का एक परिचय करने का प्रयास किया गया है।

'प्रभा' पत्रिका- इस पत्रिका का प्रकाशन वर्ष 1913 में खण्डवा से प्रारंभ हुआ था। इसका प्रकाशन श्रीयुत कालूरामजी गंगरोठ के संपादकत्व में 'रिव्यू ऑफ रिव्यू' पत्रिका के आदर्श को अपनाते हुए किया था। बाद में इस पत्रिका का प्रकाशन कानपुर से प्रारंभ हुआ जिसके संपादक मंडल में पंडित बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' एवं पंडित माखनलाल चतुर्वेदी भी जुड़ गए थे। द्विवेदी युग

के लगभग सभी प्रमुख लेखकों जैसे-सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, इलाचन्द्र जोशी, देवदत्त शर्मा, पंडित बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', पंडित माखनलाल चतुर्वेदी आदि के लेख पत्रिका में प्रमुख रूप से छपते थे। द्विवेदी युग की पत्रिकाओं के अध्ययन से यह स्पष्ट है कि इस युग की पत्रिकाओं में हिंदी भाषा के संस्कार एवं परिष्कार पर विशेष बल दिया गया। पत्रिकाओं में धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक जैसे विविध विषयों का प्रकाशन किया गया, ताकि भारतीय जनमानस को जागृत करते हुए देशप्रेम तथा स्वतंत्रता की भावना उत्पन्न की जा सके। असहयोग आंदोलन के असफल होने के बाद वर्ष 1923 में स्वाधीनता संग्राम में नई जान फूंकने के प्रयास के तहत झंडा आंदोलन की शुरूआत हुई। पूरे देश में झंडा जत्थों ने स्वाधीनता का झंडा फहराया व गिरफ्तारियाँ दी। उसी वर्ष प्रभा पत्रिका ने अपना ऐतिहासिक 'झंडा अंक' निकाला। इसमें झंडा आंदोलन के जत्थों में शामिल आंदोलनकारियों का सचित्र विवरण मिलता है। इस अंक के लेखक श्रीयुत बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' थे।

'चांद' मासिक पत्रिका- 'चाँद' मासिक पत्रिका का प्रकाशन वर्ष नवम्बर 1922 में इलाहाबाद से हुआ था इसके संपादक एक उत्साही राष्ट्रप्रेमी श्री रामरख सिंह सहगल तथा श्री रामकृष्ण मुकुन्द लघाटे, बी.ए. थे। इस पत्रिका के संपादक मंडल में श्री नंदगोपाल सिंह सहगल, श्रीमती महादेवी वर्मा, श्री नंदकिशोर तिवारी भी जुड़े थे। कुछ दिनों तक इसका संपादन मुंशी नवजादिक लाल ने भी किया था। इनके संपादन में समय-समय पर सत्यभक्त आदि अपने समय के कई प्रखर और गतिशील व्यक्तियों ने योगदान किया था। 'चाँद' भारतीय महिलाओं की सचित्र मासिक पत्रिका थी, क्योंकि इस पत्रिका में विशेषत: महिला केन्द्रित आलेख ही प्रमुख तौर पर संकलित किए जाते थे, इस कारण इस पत्रिका को महिलाओं की पत्रिका भी कहा जाता था। इस महत्वपूर्ण पत्रिका ने कई ऐसे विशेषांक निकाले थे, जिन्होने अपने समय संदर्भो को प्रभावित किया था।

अप्रैल 1923 में 'चाँद' ने 'विधवा अंक' प्रकाशित किया। इस अंक में उस समय के विद्वान लेखकों द्वारा लिखी गयी 52 रचनाएँ संकलित की गयी थी जो विधावाओं की दुर्दशा, उनका जीवन, उनका सामाजिक परिवेश, उनके सुधार की आवश्यकता आदि पर केन्द्रित थी। इस सामग्री का उस समय कितना विरोध हुआ होगा यह आज सहज ही अंदाजा लगाया जा सकता है, क्योकि

उस समय विधवाओं का जीवन किसी नरक यातना से कम नही था। विधवाओं का पुर्नविवाह समाज में घोर अपराध समझा जाता था। इसी अंक में विधवा समस्या पर आधारित प्रेमचंद की प्रसिद्ध कहानी 'नैराश्य लीला' प्रकाशित हुई थी जो आज भी धारदार है।

जनवरी 1926 में 'चाँद' ने 'प्रवासी अंक' निकाला जिसका संपादन प्रसिद्ध विद्वान पंडित बनारसीदास चतुर्वेदी ने किया था। इसमें प्रवासी भारतीयों की समस्याओं की गहराई से उठाया गया था। 225 पृष्ठों की पत्रिका का यह 39 वां अंक था। इसी अंक में प्रेमचंद ने मॉरीशस जाने वाले भारतीयों के जीवन पर एक कहानी 'शुद्रा' लिखी। एक तो चाँद पत्रिका का प्रवासी अंक निकालना ही महत्वपूर्ण था जो इस बात का प्रमाण था कि हिंदी साहित्यकार तथा पत्रिका संपादक भारत के प्रवासियों के प्रति कितने संवेदनशील थे और दूसरे प्रेमचंद जैसे हिंदी-उर्दू के विख्यात कहानीकार का इस विषय पर कहानी लिखना तो और भी महत्वपूर्ण था। 'शुद्रा' प्रवासी भारतीयों पर लिखी गयी हिंदी की पहली कहानी थी।

इसी पत्रिका का लोकप्रिय कथाकार मुंशी प्रेमचंद ने दिसम्बर 1926 के 'गल्पांक विशेषांक' का संपादन किया था जो काफी प्रसिद्ध रहा था। इसका प्रकाशन 'चाँद कार्यालय इलाहाबाद से हुआ था। इस गल्पांक विशेषांक में प्रकाशित प्रेमचंद जी 'गल्पांक का प्रस्ताव' नामक संपादकीय में कहते है कि-''विशेषांक के निकालने में कदाचित समस्त हिंदी पत्रिकाओं में 'चाँद' ही को प्रथम स्थान प्राप्त है। अपने जन्म से लेकर अब तक 'चाँद' के नौ विशेषांक निकल चुके है। इस वर्ष भी उसने चार विशेषांक निकालने का निश्चय कर लिया है।......आज से एक महीना पहले जब 'चाँद' के सुयोग्य संपादक ने मुझसे गल्पांक प्रकाशित करने का प्रस्ताव किया तो मै विस्मित रह गया। प्रस्ताव बिल्कुल नूतन और असाधारण था। मुझे भय हुआ कि कहीं गल्पांक का मजाक न उड़ाया जाये ! नये विचार सनातन धर्मावलम्बियो की दृष्टि मे हास्याष्पद होते ही है। लोग नाक न सिकोड़ने लगे, यह क्या खुराफात है। भला कोई तुक भी तो हो गल्पो में ऐसी कौन सी विशेषता है कि उनको यह महत्व दिया जाये, किन्तु साहित्य में गल्प के महत्व पर जब विचार किया तो मुझे इस प्रस्ताव का सहर्ष स्वागत करने और इस अंक का संपादन भार लेने में कोई बाधा न दिखायी दी।'' इस प्रकार प्रेमचंद के इस गल्पांक विशेषांक के निकालने के संबंध में स्पष्ट विचार परिलक्षित होते है।

मई 1927 में इस पत्रिका का 'अछूतांक' प्रकाशित हुआ जिसका संपादन पंडित नंदकिशोर तिवारी ने किया था। श्री तिवारी क्रांतिकारी विचारों के संपादक थे। इसका सबसे बड़ा उदाहरण 'चाँद' के इस अंक का मुखपृष्ठ है जिसमें पंडित नंदकिशोर तिवारी प्रेस के हिंदी विभाग के दलित कंपोजीटर वंशीलाल कोरी के साथ एक ही थाली में भोजन कर रहे है। उस युग में इसका कितना विरोध हुआ होगा इसकी सिर्फ कल्पना ही की जा सकती है। 'चाँद' का अछूत अंक मिशन पत्रकारिता का अन्यतम उदाहरण है। इस विशेषांक का संपादन इस प्रकार से किया गया था कि अछूत समस्या का कोई भी पक्ष छूटने न पाए इसके लिये इसके संपादक पंडित नंदकिशोर तिवारी जी ने उस समय के प्रसिद्ध लेखकों से इस अंक के लिये सामग्री जुटाई थी। इस अंक की उत्तेजित सामग्री आज भी सोचने पर मजबूर कर देती है। इसी प्रसिद्ध अंक में अछूत समस्या पर केन्द्रित

प्रेमचंद जी की मशहूर कहानी 'मंदिर' छपी थी। इस विशेषांक की सामग्री आज भी दलित चेतना को सही दिशा देने मे महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। तिवारी जी के ही संपादन में 'चाँद' का एक 'पत्रांक' भी छपा जिसकी खूब चर्चा हुई। बावू जयशंकर प्रसाद, अवध उपाध्याय, नवीन जी, श्रीधर पाठक, रामचरित उपाध्याय, रामदास गौड़, आचार्य चतुरसेन, हरिऔध जी जैसे प्रतिष्ठित लेखकों ने इस अंक के लिए खास तौर पर अपनी विशिष्ट रचनाएँ दी थी। जून 1928 तक तिवारी जी 'चाँद' के संपादन से जुड़े रहे। इसके बाद पूरा भार रामरख सिंह सहगल जी ने उठाया।

लेकिन 'चाँद' के 'फाँसी अंक' ने जो इतिहास बनाया, वह अपने आप में बेजोड़ है। इस अंक का प्रकाशन नवम्बर 1928 में हुआ था तथा इस अंक के संपादक आचार्य चतुरसेन शास्त्री थे। शास्त्री जी ने अपनी उत्कृष्ठ संपादकीय दृष्टि से इस अंक को महत्वपूर्ण व कालजयी बना दिया। यह विशेषांक दीपावली के अवसर पर प्रकाशित हुआ था और चाँद पत्रिका के सातवें वर्ष का प्रथम अंक था। 'चाँद' के 'फाँसी अंक' में जो सामग्री प्रकाशित की गयी थी, वह अत्यंत मूल्यवान थी। फाँसी को एक क्रूर कर्म मानते हुये इस समाज को अमानवीय और असभ्य राज संस्कारो से जोड़ा गया था। इस सवा तीन सौ पृष्ठों के अंक में जो सामग्री संकलित की गयी थी वह देश और विदेशों से प्राप्त अनेक प्रमाणिक, ऐतिहासिक और मार्मिक सामग्री के आधार पर थी जो विद्रोह और बगावत को बढ़ावा देने वाली थी, इस कारण ब्रिटिश सरकार ने 'चाँद' के इस अंक को जब्त कर लिया। एवं इसके प्रकाशन पर रोक लगा दी तथा घोषणा करवा दी कि जिस किसी सज्जन के पास इसकी एक प्रति भी पायी जाये, उसे इसी आरोप में जेल की हवा खानी पड़ सकती है। परन्तु 'फाँसी अंक' की जो प्रतियाँ बाहर बिक्री हेतु चली गयी थी, वे पचास-पचास रूपए में बिकी जबकि उसका मूल्य केवल दस या पन्द्रह रूपए था। 'चाँद' के शुरूआती दिनों में कुछ माह तक रामकृष्ण मुकुन्द लघाटे भी सहगल जी के साथ इसके संपादक के रूप में जुड़े रहे थे, परन्तु उनका 24 वर्ष की अल्पायु में ही निधन हो गया था। इस अंक में अनेक क्रान्तिकारियों ने छद्म नाम से लेख लिखे थे, कई आलेख भगत सिंह के लिखे बताए जाते है। अपनी तरह का यह विस्फोटक अंक भारतीय क्रान्तिकारी आंदोलन का विशिष्ट दस्तावेज है।

'चाँद' का 'फाँसी अंक' जैसे प्रसिद्ध हुआ था उसी प्रकार 'चाँद' का 'मारवाड़ी अंक' अपने समय में काफी बहुचर्चित रहा था। परन्तु चर्चित होना एवं हिंदी साहित्य में अपना स्थान बनाना, दोनो अलग-अलग बात है। इस अंक के साथ भी लगभग यही हुआ था क्योकि अपने ही भाइयों के एक वर्ग और जाति विशेष के विरूद्ध सामग्री होने के कारण उसको वह स्थान नही मिल पाया जो 'फाँसी अंक' को मिला था। साहित्यिक होते हुये भी इसमें समाज सुधार की प्रवृत्ति बलवती रही। इस अंक को लोग आज भी नही भूले हैं। चाँद पत्रिका ने इस विशेषांक के साथ अपने जीवन के आठवें वर्ष में प्रवेश किया तथा चाँद का यह 'मारवाड़ी अंक' नवम्बर 1929 में प्रकाशित हुआ था। यह एक विशेषांक नही विस्तृत पोथी है इसमें लगभग 400 पृष्ठ, करीब 50 व्यंग्य चित्र, बहुत से रंगीन चित्र तथा कई सौ सादे चित्र है। इसमें बहुत से लेख हैं, जो बहुत ही रोचक हैं, तथा कुछ कविताएँ भी है। इसके प्रथम लेख में, जो इस अंक के साठ पृष्ठों से अधिक में लिखा गया है, मारवाड़ी समाज का विस्तृत निरीक्षण किया गया है। इस अंक के व्यंग्य चित्रों में मारवाड़ी जीवन के

उस अंश पर प्रकाश डाला गया हैं, जिसमें आमूल परिवर्तन और सुधार की आवश्यकता है। 'चाँद' का यह विशेषांक ह्दय से प्रशंसा करने के योग्य है। पत्रिका ने 'वेश्या' विशेषांक भी निकाला था।

'चाँद' के संचालक रामरख सिंह सहगल अत्यन्त मेधावी, कल्पनाशील और प्रबन्ध-कुशल व्यक्ति थे उन्होने समय की नाड़ी को पकड़कर न केवल तत्कालीन श्रेष्ठ साहित्यिकों की रचनाओं से ही अपनी पत्रिका का श्रृगांर किया, बल्कि समय की आवश्यकता के अनुसार इसकी गतिविधियों में विविध परिवर्तन करते हुए चाँद को सर्वप्रिय और सर्वग्राह्य पत्रिका बना दिया था। उस जमाने में चाँद के एक के बाद एक जो विशेषांक निकले थे वे अपने ढंग के अनूठे एवं पठनीय थे। सह समस्त विशेषांक हिंदी साहित्य की अनमोल धरोहर है। पाठक आज भी इन विशेषांकों को पढ़कर उनसे प्रभावित हुए बगैर नही रह सकता। कह सकते है इन अंकों में प्रकाशित सामग्री की धार आज भी उतनी ही धारदार है जितनी इनके प्रथम प्रकाशन पर थी।

'स्वदेश' हिंदी साप्ताहिक पत्र-'स्वदेश' नाम का हिंदी समाचार पत्र गोरखपुर से प्रकाशित होता था। पंडित दशरथ प्रसाद द्विवेदी इसके संपादक थे। इस पत्र का 'विजय अंक' वर्ष 1924 में प्रकाशित हुआ था। यह अंक काफी लोकप्रिय हुआ था। इस पत्रिका का 'दशहरा अंक' भी अपने समय में काफी प्रसिद्ध हुआ था, इन अंकों का संपादन पांडेय बेचन प्रसाद शर्मा 'उग्र' ने किया था। इन पत्रों को अंग्रेजी सरकार ने जब्त कर लिया था।

'हिंदू पंच' पत्रिका-भारत के स्वाधीनता आंदोलन में हिंदी पत्रों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है, इन पत्रों में 'हिंदू पंच' का स्थान बहुत ऊँचा हैं। हिंदू पंच अंग्रेजी शासनकाल में कलकत्ता से निकलने वाली एक हिंदी पत्रिका थी। इसका प्रकाशन वर्ष 1926 में कलकत्ता से आंरभ हुआ था और उसका संपादन का दायित्व वहन किया था द्विवेदी युग के प्रसिद्ध लेखक पंडित ईश्वरी दत्त शर्मा ने। पत्रिका के ध्येय वाक्य के रूप में प्रत्येक अंक के प्रथम पृष्ठ पर दो काव्य पंक्तियाँ इस प्रकार छपी होती थी-

लज्जा रखने हिंदू की, हिंदू नाम बचाने को।
आया 'हिंदू पंच' हिंद में, हिंदू जाति जगाने को॥

यहाँ 'हिंदू' शब्द पर विशेष बल है और वह पुनर्वार आया है, लेकिन इसे आज के चड्डीधारी हिंदुत्व के बजाय 'कौम' या 'जाति' के अर्थ में लेना होगा। हिंदू अर्थात् हिंदू, अर्थात् हिंदुस्तान में रहने वाले सभी धर्मो, सम्प्रदायों का जातीय समूह जो अपने राष्ट्रीय हितों को सर्वोपरि मानता हो। हिंदू पंच का 'बलिदान अंक' पहली जनवरी, 1930 को कोलकाता से प्रकाशित हुआ था। यह अंक वर्ष-5 का पहला अंक था। इस अंक को अंग्रेजी सरकार ने प्रतिबंधित कर दिया था। यह अंक आज भी अमर है। इस 'बलिदान अंक' के संपादक श्री कमलादत्त पाण्डेय थे, वे इस अंक की भूमिका में इस विशेषांक की सार्थकता को स्पष्ट करते हुए कहते है ''यह एक अत्यंत आंदोलनकारी समय है। इस समय न केवल इस देश में बल्कि समग्र भूमण्डल पर और समस्त देशों और जातियों में एक अभूतपूर्व अतिक्रांति की उत्ताल तरंग उठी है। प्राचीन परम्पराओं और दासता को पकड़ने वाली रूढ़ियों के विरूद्ध एक धार विप्लव मचा है। ऐसे उथल-पुथलकारी युग में लाहौर राष्ट्रीय कांग्रेस के शुभ अवसर पर हम सहर्ष आपकी सेवा में यह विप्लवकारी 'बलिदान अंक' सादर समर्पित करते है। यह अंक कैसा हुआ है, हम अपनी मनोकामना में कहां तक सफल हुए है, इसका निर्णय आप स्वयं ही इसे पढ़कर कर सकेंगे।''

'बलिदान अंक' का संयोजन पाँच विभागों के अन्तर्गत किया गया था। 1-प्राचीन भारत के बलिदान-जिसमें वेद, महाकाव्य, पुराण आदि संस्कृत वाड्मय में से शिवि, दीधीचि, प्रह्लाद, राम, कृष्ण, भीष्म, कर्ण, अभिमन्यु, जटायु, हरिशचन्द्र आदि की चर्चा की गयी है। कुल मिलाकर इस खण्ड में 13 आलेख संकलित किए गए है। 2-मध्यकालीन भारत के बलिदान में उन बलिदानियों पर ध्यान केन्द्रित किया गया है, जो मुगलों से लड़े थे। इनमें राणाप्रताप, शिवाजी, हमीर, हकीकत राय, बंदा वैरागी और सिख गुरूओं आदि को लेकर 1857 के नाना साहब, लक्ष्मी बाई, कुँअर सिंह आदि तक की त्याग और बलिदान की कथाएँ 30 आलेखों के तहत की गयी है। इनके साथ पन्ना, पद्मिनी, दुर्गावती, हाड़ा रानी, महारानी विन्दा आदि वीर नारियों की कथाएँ भी लिखी गयी है। 3-वर्तमान भारत के बलिदानियों में लेखकों ने महाराष्ट्र और बंगाल के साथ 20 वीं सदी के शहीदों और जेल में बंद हिंदी प्रदेश के क्रांतिकारियों की जीवनियाँ दी गयी है। एक लेख जलिया वाला बाग पर है। इस खण्ड में कुल मिलाकर 32 आलेख विभिन्न लेखकों द्वारा लिखे गए है। 4-कविता खण्ड में राष्ट्रीय कविताओं का चयन प्रस्तुत किया गया है। इस खण्ड में लगभग 21 कविताएँ संकलित की गई है। 5-विदेशों में बलिदान, इसमें एक ओर जहाँ सुकरात, ईसा, जॉन ऑफ आर्क के त्याग और बलिदान पूर्ण जीवन की झलकियाँ दी गई है, वहीं फ्रेंच, आयरिश, तुर्की, चीनी, जापानियों की क्रांतियों की कथाएँ और कालमार्क्स, लेनिन तक अन्य अनेक बोल्शेविक क्रांतिकारियों की संघर्षगाथाएँ दी गई है। इस तरह हम देखते है कि

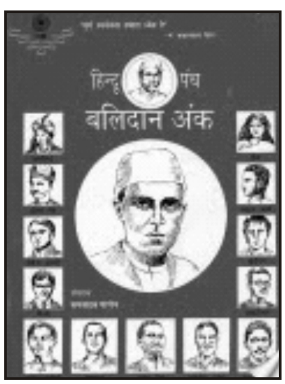

हिंदू पंच के बलिदान अंक का फलक बहुत व्यापक है। इस अंक में लगभग 111 श्वेत-श्याम दुर्लभ चित्र भी संकलित किए गए है जो इस अंक को ऐतिहासिक रूप प्रदान करते हैं। यह अंक राजनीतिक विचारधारा के दृष्टिकोण से बहुत महत्वपूर्ण है। बलिदान अंक में संकलित सामग्री आज के लिए भी बहुत प्रासंगिक है इसमें पुराने इतिहास के बारे में तथा पत्रकारिता एवं स्वाधीनता आंदोलन के बारे में बहुत सी जानकारी प्राप्त होती हैं।

'विशाल भारत' मासिक पत्रिका- 'प्रवासी' और 'मॉर्डन रिव्यू' के संपादक श्री रामानंद बावू हिंदी की व्यापकता से भली भाँति वाकिफ थे। देश के ज्यादा से ज्यादा पाठकों तक अपने विचार पहुँचाने के लिये वर्ष 1928 में उन्होने हिंदी मासिक पत्रिका 'विशाल भारत' का प्रकाशन किया। इस पत्रिका का प्रकाशन कोलकाता से किया गया। बनारसीदास चतुर्वेदी उसके संस्थापक संपादक नियुक्त हुए। जनवरी 1928 में 'विशाल भारत' का प्रवेशांक निकला। साहित्य, समाज सुधार, राजनीति, इतिहास और अर्थशास्त्र पर पठनीय लेखों से सुसज्जित पूरे 144 पृष्ठों में। बनारसीदास चतुर्वेदी के संपादन में 'विशाल भारत' जल्द ही हिंदी का सर्वश्रेष्ठ मासिक बन गया। शुरू के तीन वर्षो में ही उसने 'साहित्यांक' (मई, 1931 इसी अंक में प्रेमचंद की कहानी 'प्रेरणा' प्रकाशित हुई थी) 'प्रवासी अंक' तथा 'कला अंक' (जनवरी, 1931) जैसे विशेषांक निकालकर अपनी धाक जमा ली। आगे चलकर इस पत्रिका के 'रवीन्द्र अंक', 'एंड्रूज अंक', 'पद्म सिंह शर्मा अंक' एवं 'राष्ट्रीय अंक' आदि के कई विशिष्ट अंक निकले थे।

विशाल भारत का 'पद्म सिंह शर्मा अंक' अगस्त 1932 में प्रकाशित हुआ था। इस संबंध में पत्रिका के जुलाई 1932 में प्रकाशित इस अंक की सूचना पाठकों को इस प्रकार दी गई थी ''विशाल भारत का आगामी अंक स्वर्गीय पंडित पद्म सिंह शर्मा की स्मृति में निकलेगा। हर्ष की बात है कि उसके लिए बहुत कुछ मसाला इकट्ठा हो चुका है, और जो कुछ थोड़े से लेख शेष है, वे भी शीघ्र ही आने वाले हैं। स्वर्गीय शर्मा जी के मित्रों व भक्तों से प्रार्थना है कि वे शीघ्र ही जो कुछ परामर्श इस विषय में देना हो, हमें लिख भेजे। विशेषांक निकलने के बाद हमारा विचार शर्मा जी का जीवन चरित लिखने का भी है, पर उसमें न जाने कितना समय लगेगा, और प्रकाशित होते-होते काफी विलम्ब हो जाने की आशंका है। जिन महानुभावों को शर्मा जी के विषय में छोटी-छोटी दो-चार बातें भी ज्ञात हो, वे उन्हे ज्यों की त्यों लिख भेजे। इस अंक में उनका उपयोग हो जाएगा। हम चाहते है कि इस अंक की एक प्रति स्वर्गीय शर्मा जी के प्रत्येक मित्र की सेवा में पहुँचे। शर्मा जी के अनेक भक्त ऐसे है, जो साधन-सम्पन्न हैं, और जिसके लिए इस अंक की सौ-एक प्रतियाँ खरीदकर अधिकारी सज्जनों को भेंट करना कोई मुश्किल बात न होगी। बड़ी कृपा हो, यदि वे तुरन्त ही इसकी सूचना भेज दें।''

बनारसीदास चतुर्वेदी ने वर्ष 1928 से 1937 (लगभग 10 वर्षो तक) इस पत्रिका का संपादन कार्य किया। आगे चलकर बनारसी दास चतुर्वेदी के आग्रह पर वर्ष 1937 में 'विशाल भारत' का संपादन करने के लिए 'अज्ञेय' कलकत्ता आ गए, उन्होने 'विशाल भारत' का लगभग डेढ़ वर्ष तक संपादन का भार संभाला। इस अल्प अवधि में ही उन्होने अपनी अमिट छाप छोड़ी।

बाद में श्री मोहन सिंह सेंगर तथा श्रीराम शर्मा भी इस प्रमुख पत्रिका का संपादन कार्य करते रहे। 'विशाल भारत' को उसका वास्तविक रूपाकार बनारसीदास चतुर्वेदी ने ही प्रदान किया था। यह पत्र 'सरस्वती' पत्रिका के बाद सबसे अधिक ख्याति प्राप्त पत्र रहा। इसी पत्र में प्रथम बार जनपदीय साहित्य की ओर ध्यान दिया गया था। संस्मरण और पत्र संग्रह की दृष्टि से भी इस पत्र का बहुत अधिक महत्व है। प्रवासी भारतीयों के प्रसंग में जो आंदोलन प्रारम्भ हुआ था, उसका प्रमुख माध्यम 'विशाल भारत' ही था। इसके लेखकों में डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, हजारी प्रसाद द्विवेदी, रामानंद चटर्जी तथा कालिदास नाग प्रभृति थे। सामग्री चयन और कलात्मक मुद्रण, दोनो ही दृष्टियों से 'विशाल भारत' के प्रारम्भिक स्वरूप में हिंदी पत्रकारिता के श्रेष्ठतम रूप का दर्शन होता है।

'हंस' मासिक पत्रिका- प्रेमचंद ने साहित्यिक पत्रिका 'हंस' की स्थापना वर्ष 1930 में बनारस में की थी। शुरू के दो वर्षो में महात्मा गांधी और कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी भी इसके संपादक मण्डल में शामिल रहे। 'हंस' का नामकरण जयशंकर प्रसाद जी ने किया था तथा 'हंस' का पहला अंक 10 मार्च 1930 को प्रकाशित हुआ। इस अंक के संपादकीय मे प्रेमचंद जी कहते है कि-''जब श्री रामचन्द्र जी समुद्र पर पुल बांध रहे थे, उस वक्त छोटे-छोटे पशु-पक्षियों ने मिट्‌टी ला-लाकर समुद्र के पाटने मे मदद की थी इस समय देश में उससे कही विकट संग्राम छिडा हुआ है। भारत ने शांतिमय समर की भेरी बजा दी है। हंस भी मानसरोवर की शांति छोड़कर अपनी नन्ही सी चोंच में चुटकी भर मिट्‌टी लिये हुये समुद्र पाटने, आजादी की जंग में योग देने चला है। समुद्र का विस्तार देखकर उसकी हिम्मत छूट रही है, लेकिन संघशक्ति ने उसका दिल मजबूत कर दिया है।'' प्रेमचंद मृत्युपर्यन्त मासिक रूप में इस पत्र को नियमित निकालते रहे। उनकी मृत्यु के बाद प्रसिद्ध कथाकार श्री जैनेन्द्र कुमार और प्रेमचंद जी की पत्नी श्रीमती शिवरानी देवी संयुक्त रूप से इसके संपादक रहे।

'हंस' पत्रिका के विश्वप्रसिद्ध विशेषांक आज भी हिंदी साहित्य में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखते है। हंस के विशेषांकों में स्वयं प्रेमचंद द्वारा वर्ष 1933 मे संपादित 'काशी अंक' के अलावा 'प्रेमचंद स्मृति अंक', 'एकांकी नाटक अंक', 'रेखाचित्र अंक', 'कहानी अंक', 'प्रगति अंक', 'आचार्य द्विवेदी अभिनन्दनांक', 'स्वदेशांक', 'शान्ति अंक' एवं 'आत्मकथा अंक' आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय रहे। जैनेन्द्र और शिवरानी देवी के बाद इसके सम्पादक शिवदान सिंह चौहान और श्रीपतराय और उसके बाद अमृतराय और तत्पश्चात् नरोत्तम नागर रहे। प्रेमचंद की मृत्यु के बाद हंस कुछेक साल निकलने के बाद फिर बंद हो गया व कुछ अंतराल के बाद फिर शुरू हुआ लेकिन फिर कुछ वर्ष चलकर इसको बंद हो जाना पड़ा। कई दिनों बाद वर्ष 1959 मे हंस का एक वृहत संकलन सामने आया जिसमें बालकृष्ण राव और अमृतराय के संयुक्त संपादन मे आधुनिक साहित्य एवं उससे संबंधित नवीन मूल्यो पर विचार किया गया था।

इस पत्रिका का 'आत्मकथा अंक' अपने दौर में काफी लोकप्रिय हुआ था। यह अंक पौष-माघ 1988 वि0 : जनवरी-फरवरी 1932 ई0 को प्रकाशित हुआ था। इस आत्मकथा अंक मे 52 आत्मकथात्मक लेखों को शामिल किया गया था। इन लेखों को लिखने वाले लेखक भी उस

समय के विश्वप्रसिद्ध साहित्यकार थे जिनमें कुछेक नाम इस प्रकार है:-श्रीयुत बावू जयशंकर प्रसाद जी, पं0 रामचन्द्र शुक्ल जी, बावू शिवपूजन सहाय जी, बावू जैनेन्द्र कुमार जी, श्रीमती शिवरानी देवी जी धर्मपत्नी श्री प्रेमचंद जी बी0ए0, मुंशी दयानारायण निगम सम्पादक जमाना, श्रीयुत सुदर्शन जी एवं खुद प्रेमचंद जी। इस अंक की शुरूआत में जयशंकर प्रसाद जी की एक कविता आत्मकथा के रूप मे दर्शित की गयी है जो अद्वितीय है। अंक में एक से बढ़कर एक आत्मकथात्मक लेखों को शामिल किया गया था जो प्रसिद्ध कथाकारों के व्यक्तित्व व कृतित्व को दर्शाते है, इसी ऐतिहासिक अंक में प्रेमचंद जी की एकमात्र जीवनी जो खुद उन्होने आत्मकथा के रूप मे लिखी थी 'जीवन सार' शीर्षक से प्रकाशित हुई थी। इस अंक में प्रेमचंद जी की धर्मपत्नी श्रीमती शिवरानी देवी का 'मेरी गिरफ्तारी' नाम से एक आत्मकथात्मक लेख शामिल है जो उनकी देश के प्रति पूर्ण समर्पणता व निष्ठा को बखूवी दर्शित करता है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि प्रेमचंद अपने पूरे जीवन में एक बार भी गिरफ्तार होकर जेल जाने के प्रमाण नही मिलते है जबकि उनकी पत्नी कई बार गिरफ्तार होकर जेल गई थी।

हंस का 'स्वदेशांक' वर्ष-3 के अक्टूबर-नवम्बर, 1932 में प्रकाशित हुआ था। इस विशेषांक में लगभग 42 रचनाएँ स्वदेशी भावना से ओत-प्रोत संकलित की गई थी। इसी अंक में प्रेमचंद की कहानी 'डामुल का कैदी' एवं एक आलेख 'नवयुग' भी संकलित हुआ था। यह अंक आज भी रोचक सामग्री के कारण हिंदी साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

हंस का 'प्रेमचंद : स्मृति अंक' के संबंध में भी पाठकों का परिचय कराना आवश्यक है। यह अंक मई 1937 में प्रेमचंद की मृत्यु के आठ महीने बाद प्रकाशित हुआ था इस विशेषांक में अनेक विद्वान रचनाकारों ने अपने-अपने दृष्टिकोण से प्रेमचंद को अश्रूपूरित श्रृद्धांजलि दी थी। इस अंक में 47 विद्वान रचनाकारों के लेखो को शामिल कर इसका महत्व बढ़ा दिया था। इस विशेषांक का पहला ही लेख प्रेमचंद जी की धर्मपत्नी श्रीमती शिवरानी देवी द्वारा लिखित 'मैं लुट गई' शीर्षक से संकलित किया गया था जो एक पत्नी की नजरिये से अपने पति को अश्रुपूरित एक छोटी सी श्रृद्धांजलि थी। इस लेख को पढ़ते समय पाठक भाव विभोर हुये बगैर नही रह सकता। प्रत्येक पाठक को एक बार अवश्यक ही इस विशेषांक को पढ़ना चाहिये।

'हंस' काफी लंबे समय तक बंद रहने के पश्चात् प्रेमचंद की मृत्यु की अर्धशती पर वर्ष 1986 में इसको पुन: शुरू किया गया इस बार इसके संपादन और प्रकाशन का दायित्व वरिष्ठ कथाकार, उपन्यासकार श्री राजेन्द्र यादव जी ने संभाला, जिसे वे 27 साल से ज्यादा समय तक निर्वाध रूप से निकालते रहे। 28 अक्टूबर 2013 को अपनी मृत्यु तक श्री राजेन्द्र यादव ने हंस के 325 अंको का संपादन किया। इस दौरान साहित्यिक पत्रकारिता के क्षेत्र में हंस एक परिघटना की तरह स्थापित हुआ। श्री राजेन्द्र यादव जी की उत्कृष्ठ संपादकीय की वजह से यह पत्र आम जनमानस मे बेहद लोकप्रिय हुआ व आज भी इस पत्र को श्री यादव की दमदार संपादकीय के लिये याद किया जाता है। हंस के अतिथि संपादकों द्वारा निकाले गये 'औरत उत्तरकथा अंक', 'मुसलमान अंक', 'इलेक्ट्रानिक मीडिया अंक एवं 'सिनेमा अंक' आदि काफी लोकप्रिय हुये।

राजेन्द्र यादव की मृत्यु के तत्काल बाद उन पर केन्द्रित एक 'स्मृति अंक' भी निकाला गया फिलहाल इस पत्रिका के संपादन का भार कथाकार संजय सहाय संभाल रहे है। हम उम्मीद करते है कि वे पूर्व की भांति ही इस लोकप्रिय पत्र की गरिमा बनाये रखेंगे व इसकी विचारोत्तक सामग्री से आज जनमानस का ज्ञानवर्धन करते रहेंगे।

समग्रत: कहा जा सकता है कि भारत के स्वाधीनता आंदोलन में उपरोक्त पत्र-पत्रिकाओं का कितना महत्वपूर्ण स्थान है यह सहर्ष ही समझा जा सकता है। तथा इन पत्रिकाओं की इन आंदोलन में जो भूमिका रही उससे इन्कार नही किया जा सकता है। यह कुछ महत्वपूर्ण पत्रिकाएँ है जिनका विवरण प्रस्तुत किया जा चुका है। इन पत्रिकओं के अलावा भी कई और भी पत्रिकाएँ है जिन्होने विशेषांकों के तौर पर पाठकों की अतुलनीय सेवा की। पाठक इन पत्रिकाओं के विशेषांकों को देखे और इनकी ओजपूर्ण सामग्री का लाभ ले। आज भी इन पत्रिकाओं का महत्व किसी भी प्रकार से कम नही है। तथा ऐतिहासिक दृष्टिकोण से इनका अपना महत्व भी है।

हंस' के प्रथम अंक का मुख-पृष्ठ

कृष्ण वीर सिंह सिकरवार, आवास : क्रमांक एच–3, राजीव गांधी प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, एयरपोर्ट वायपास रोड, गांधी नगर, भोपाल–462033 (म0प्र0)
मो0 : 09826583363, ई–मेल : krishanveer74@gmail.com

✧ ✧ ✧

हिन्दी कविता में प्रतिरोध की परम्परा

रामचरण पाण्डेय

भक्ति आंदोलन ने प्रतिरोध की परम्परा को वेगवान बनाया। भक्त कवि धर्म ही नहीं समाज के सभी क्षेत्रों में बराबरी और न्याय की मांग करते हुए एक समतामूलक समाज की स्थापना के लिए कटिबद्ध थे। डॉ. रामविलास शर्मा ने लिखा है ''भक्ति आंदोलन विशुद्ध देशज् आंदोलन है। वह सामंन्ती समाज की परिस्थितियों से उत्पन्न हुआ था, वह मूलतः इस सामन्ती समाज-व्यवस्था से विद्रोह का साहित्य है।''[8] यदि भक्ति आंदोलन के कवियों की कविता को ध्यान में रखें तो सभी कवियों का लक्ष्य है मानवता की प्रतिष्ठा।

हिन्दी कविता में प्रतिरोध की परम्परा पर बात करते हुए प्रतिरोध की अवधारणा पर बात कर लेनी चाहिए। प्रतिरोध अंग्रेजी के 'Resistance' का हिन्दी अनुवाद है जो लैटिन शब्द 'Resist' से बना है। वस्तुतः यह शब्द 'Resist' लैटिन से फ्रेंच में ओर फ्रेंच से अंग्रेजी में आया है जिसका वास्तविक अर्थ 'खड़ा होना' (to stand) है।[1] यूरोप के राजनैतिक इतिहास के सन्दर्भ में 'Resistance' का अर्थ भूमिगत होना आया है। द्वितीय विश्वयुद्ध के समय नाजियों का विरोध करने के लिए कई गुप्त एवं भूमिगत संगठन समूचे यूरोप में बने।[2] 'वृहत्त प्रामाणिक हिन्दी कोश' के अनुसार प्रतिरोध का अर्थ है 'किसी आवेग, आक्रमण आदि को रोकने के लिए किया जाने वाला कार्य।'[3] स्पष्ट है प्रतिरोध किसी आक्रमणकारी अथवा वर्चस्वशाली सत्ता के खिलाफ होता है। वर्चस्वशाली सत्ता का सकारात्मक दिशा में किया गया विरोध ही प्रतिरोध है।

प्रतिरोध के लिए असंतोष का भाव होना जरूरी है। कविता का जन्म भी असंतोष से होता है। वर्तमान व्यवस्था से क्षुब्ध होकर कवि अपने साहित्य में एक नई दुनिया का सृजन करता है। हिन्दी कविता के आदि कवि सरहपा ने तथाकथित पंडितों की अभिजात्यता पर प्रहार करते हुए कहा था, ''पंडिय सअल सत्त बक्खाणइ। देहहि रूद्ध बसंत न जाणइ''।[4] इसी आभिजात्यता की उपेक्षा करते हुए अब्दुल रहमान ने 'संदेश रासक' की रचना की है। डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी ने लिखा है कि ''इस ग्रंथ

की रचना करते समय अद्दहमाण की दृष्टि लोकवादी थी।[5] आदिकाल के दो महत्वपूर्ण कवि विद्यापति और खुसरो हैं। डॉ. रामविलास शर्मा इन्हीं दो कवियों से लोकजागरण की शुरुआत मानी है।[6] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कहा है ''खुसरो का लक्ष्य जनता का मनोरंजन था।''[7] स्पष्ट है खुसरो सामन्तवादी व्यवस्था में रहकर भी जनता के मनोरंजन के लिए साहित्य रचना कर रहे थे। इसी तरह विद्यापति भी साधारण जनता की बोली-बानी 'अवहट्ठ' भाषा में साहित्य सृजन कर रहे थे।

भक्तिआंदोलन ने प्रतिरोध की परम्परा को वेगवान बनाया। भक्त कवि धर्म ही नहीं समाज के सभी क्षेत्रों में बराबरी और न्याय की मांग करते हुए एक समतामूलक समाज की स्थापना के लिए कटिबद्ध थे। डॉ. रामविलास शर्मा ने लिखा है ''भक्ति आंदोलन विशुद्ध देशज् आंदोलन है। वह सामंन्ती समाज की परिस्थितियों से उत्पन्न हुआ था, वह मूलतः इस सामन्ती समाज-व्यवस्था से विद्रोह का साहित्य है।''[8] यदि भक्ति आंदोलन के कवियों की कविता को ध्यान में रखें तो सभी कवियों का लक्ष्य है मानवता की प्रतिष्ठा। मानवता की प्रतिष्ठा के लिए प्रायः हिन्दी के भक्त कवि प्रतिरोध का रास्ता अख्तियार करते हैं। कबीर समाज की आलोचना प्रस्तुत करते हुए हिन्दू व मुस्लिम दोनों को रास्ते से भटका हुए बताते हुए समाज में व्याप्त रूढ़ियों व बाह्य आडम्बरों का विरोध करते हैं। विजयदेव नारायण साही ने बहुत सही कहा है, ''कबीरदास की प्रमुख मुद्रा हिन्दू-मुसलमान, दोनों समाजों के सरगनाओं को चुनौती देने वाली है। उनका स्वर प्रतिरोधी है।''[9] जायसी ने भी 'पद्मावत' महाकाव्य में 'मानषु प्रेम' की प्रतिष्ठा करते हुए अहंकार से युक्त वर्चस्व की सत्ता का प्रतिकार किया है। सूरदास की कविता में राधा और कृष्ण का प्रेम सामंती नैतिकता के बंधनों से मुक्त प्रेम है। गोपियां मर्यादा की रूढ़ियों का विरोध करती हुई कहती हैं ''अब इन दशा देखि निज नैननि/सब मर्याद ढही।'' सूरदास उस रूढ़िग्रस्त समाज की सामंती नैतिकता का विरोध कर रहे हैं जहाँ प्रेम पर पहरा दिया जाता है। तुलसी की कविता में भी समाज सत्ता तथा राजसत्ता के प्रति प्रतिरोध देखने को मिलता है। तत्कालीन आतताई राजाओं की दमनकारी सत्ता को चुनौती देते हुए तुलसीदास कहते हैं- ''जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी/सो नृप अवसि नरक अधिकारी।।'' इसी तरह समाज सत्ता के रूप में मौजूद वर्णाश्रम व्यवस्था का भी खंडन करते हुए तुलसीदास सरयू नदी के तट पर चारों वर्णों को एक साथ स्नान करा रहे हैं- ''राजघाट सब विधि सुन्दर वर/मज्जहिं तहाँ वरन चारिउ नर।'' डॉ. रामविलास शर्मा ने ठीक ही लिखा है ''तुलसी का साहित्य एक ओर आत्मनिवेदन और विनय का साहित्य है, दूसरी ओर वह प्रतिरोध का साहित्य है।''[10]

भक्त कवयित्री मीरा के यहाँ धर्म सत्ता, राज सत्ता तथा पुरुष सत्ता के विरूद्ध जो प्रतिरोध का स्वर है वैसा किसी अन्य कवि में नहीं है। वे समूचे भक्तिकाल में प्रतिरोध की प्रतिमूर्ति हैं। वे विरोधियों को चुनौती देते हुए घोषणा करती हैं-

''लोकलाज कुल कानि जगति की दई बहाइ जस पानी?
अपने कुल का परदा कर ले मैं अबला बौरानी।।''

इस तरह हम देख सकते हैं कि वर्चस्व कायम करने वाली सभी सत्ता से भक्त कवि प्रतिरोध करते हुए समाज में मानवता की प्रतिष्ठा करते हैं।

भक्ति काल में जो प्रतिरोध की परम्परा थी वह रीतिकाल में आकर अवरुद्ध होती दिखाई देती है। भक्त कवि जहाँ सत्ता से दूरी बनाए हुए थे 'संतन को कहाँ सीकरी सो काम' वहीं रीति काल के कवियों का सत्ता से जुड़ाव जग-जाहिर है। परिणाम स्वरूप ''रीतिकाल में रसिकता और शास्त्रीयता का योग हुआ, जो उस युग के एकांत प्रशमित से वातावरण के अनुकूल है। लगता है सारा परिदृश्य यहाँ अचल हो गया है।''[11] रीतिकाल की कविता समाज से कटी हुई है इसलिए उसमें संघर्ष तथा प्रतिरोध की भावना नहीं है। लेकिन रीतिकाल की मुख्य धारा के समानान्तर ही वीर काव्य, नीतिकाव्य एवं स्वच्छंदतावादी काव्यधारा भी चल रही थी। इस धारा को डॉ. रामविलास शर्मा ने लोकजागरण की काव्य धारा से जोड़ा है। वास्तविक अर्थों में यह लोकजागरण की काव्यधारा ही प्रतिरोध की काव्यधारा थी। जब रीतिकाल के प्रसिद्ध कवि चिंतामणि और मतिराम रीतिग्रंथों में शास्त्रीयता तथा नायिकाओं के भेद बता रहे थे उसी समय इन्हीं के सगे भाई भूषण ने ''इतिहास की उस प्राणवान धारा को पहचाना जो औरंगजेबी अत्याचार के विरुद्ध बह रही थी। इस धारा के भगीरथ शिवाजी थे... भूषण की प्रशस्तियाँ जातीय जीवन की पक्षधार और अत्याचार के विरुद्ध सक्रिय थी।''[12]

प्रतिरोध का उभार एक बार फिर आधुनिक काल की भारतेन्दुयुगीन कविता में दिखलाई पड़ता है। इस युग की कविता का प्रतिरोध ब्रिटिश साम्राज्यवाद एवं देशी सामन्तवाद से था। लेकिन यह प्रतिरोध बहुत कुछ द्वन्द्वात्मक रूप से ही सामने आता है। मसलन - ''अंग्रेज राज सुख साज सजै सब भारी/पै धन विदेश चलि जाती है अति ख्वारी''।[13] यानी की अंग्रेजी राज में सुख-सुविधा तथा साजो-समान तो खूब है। यह अच्छी बात है लेकिन इसका पीड़ादायक पहलू है कि भारत का धन विदेश चला जा रहा है। कवि की मुख्य चिन्ता आर्थिक लूट को लेकर है। इसे देशभक्ति एवं राज भक्ति की टकराहट के रूप में देखा जाता है। हम कह सकते हैं कि भक्तिकाल का मुख्य प्रतिरोध सामाजिक और सांस्कृतिक था, जबकि आधुनिक काल में आकर मुख्य प्रतिरोध आर्थिक हो जाता है। परन्तु भारतेन्दु युग का प्रतिरोध द्वन्द्वात्मक रूप में ही दिखलाई पड़ता है। चाहे वह देश भक्ति व राजभक्ति के रूप में हो या ब्रजभाषा या खड़ी बोली के बीच हो।

द्विवेदी युग की कविता में प्रतिरोध की द्वन्द्वात्मकता खत्म हो जाती है। यहाँ राष्ट्रीय चेतना को लेकर ब्रिटिश सत्ता के प्रति कोई रियायत नहीं है। नायकत्व की धरणा यहाँ टूटती है। मैथिलीशरण गुप्त उपेक्षित चरित्र उर्मिला एवं यशोधरा को अपने काव्य की नायिका बनाते हैं। अयोध्या प्रसाद उपाध्याय 'हरिऔध' के 'प्रियप्रवास' में राधा अपने पारम्परिक रूप में न आकर लोक-सेविका के रूप में आती है। द्विवेदी युग की कविता खड़ी बोली को काव्यभाषा के रूप में अपनाती है और यह खड़ी बोली तत्कालीन स्वतंत्रता संग्राम की मुख्य भाषा भी थी। द्विवेदी युग में एक काव्यधारा स्वच्छन्तावाद की थी जिसके प्रवर्तक कवि श्रीधर पाठक थे। आचार्य शुक्ल ने कहा है कि- ''समाज सुधाार के वे बड़े आकांक्षी थे''।[14] और कहना न होगा कि समाज सुधार के लिए प्रतिरोध आवश्यक हो जाता है। स्वच्छंदतावादी कवि सामंती संस्कारों तथा रूढ़ियों के प्रति विद्रोह करके प्रतिरोध कर रहे थे। साम्राज्यवादी विरोधी संघर्ष को तेज करते हुए कविवर नाथूराम शर्मा 'शंकर' ने 'बलिदान गान' कविता में कहा कि- ''देशभक्त वीरो, मरने से नेक नहीं डरना होगा/प्राणों का बलिदान देश की वेदी पर करना होगा।''[15]

सामंती समाज के खिलाफ प्रतिरोध की परम्परा जो भक्तिकाल से शुरू हुई थी वह छायावाद तक आते-आते विद्रोह के रूप में परिवर्तित हो जाती है। यहाँ यह स्पष्ट कर देना जरूरी है कि प्रतिरोध और विद्रोह दोनों एक ही स्थिति के अलग-अलग चरण हैं। प्रतिरोध विद्रोह की पहली सीढ़ी है। प्रतिरोध में जब सक्रिय कार्यवाही जुड़ जाती है तो वह विद्रोह कहलाता है और जब विद्रोह व्यापक होता है, एक बड़े समूह में विश्वदृष्टि के साथ होता है तो वह क्रांति का रूप ले लेता है। बहरहाल छायावादी कविता में सामंती नैतिकता एवं सामाजिक रूढ़ियों के ताने-बाने को उखाड़ फेंकने की तीव्र अभिव्यक्ति है। छायावाद के विद्रोही स्वरूप पर डॉ. नामवर सिंह कहते हैं कि ''पूर्ववर्ती कविता की निर्वैयक्तिकता की तुलना में यह वैयक्तिकता का आग्रह कितना बड़ा विद्रोह था, इसका अनुमान तत्कालीन पुराण-पंथी पंडितों की आलोचनाओं से कुछ-कुछ हो सकता है।''।[16] प्रतिरोध की अवधारणा में यह बात समाहित है कि जो ऊर्जा तमाम दिशाओं में बह रही थी उसे एक मुखी कर दिया जाए। छायावाद में प्रतिरोध की इस अवधारणा को मूर्त होते हुए देखा जा सकता है। प्रसाद 'कामायनी' में कहते हैं-

प्रतिरोध की यह परम्परा प्रगतिाद में आकर पहली बार संगठित रूप में दिखलाई पड़ती है। इसका कारण यह था कि प्रगतिवाद को मार्क्सवाद के रूप में एक सुचिन्तित तथा सुस्पष्ट विचारधारा मिल गई थी। प्रगतिवाद ने दुनिया को बदलने की बात की। प्रगतिवादी कविता में शोषक तथा पूँजीपति वर्गों से घृणा तथा शोषित किसन-मजदूर वर्गों से सहनुभूति प्रकट किया गया है। प्रगतिवादी कविता का लक्ष्य था समाज में शोषण का अन्त होना चाहिए और देश में साम्यवादी सरकार होनी चाहिए। इसके लिए वे क्रांति का भी सहारा लेते हैं।

''शक्ति के विद्युतीकण जो व्यस्त
विकल बिखरे हैं हो निरुपाय
समन्वय उनका करे समस्त
विजयिनी मानवता हो जाए।''[17]

मानवता को विजयी बनाने के लिए प्रतिरोध की तमाम शक्तियों को एकजुट करना प्रसाद का अभीष्ट था। इसी तरह निराला भी ब्रिटिश पराधीनता से मुक्ति के लिए 'शक्ति' की 'मौलिक कल्पना' की बात करते हैं। यानी की प्रतिरोध तभी फ़ल होगा जब भारतीय जन शक्ति को संगठित करते हुए उसे अपने पक्ष में किया जाए। निराला का प्रतिरोधी स्वर परिवर्तन के लिए कार्यवाही की मांग करता है-

''जल्द-जल्द पैर बढ़ाओ, आओ, आओ
आज अमीरों की हवेली/किसानों की होगी पाठशाला''[18]

यहाँ निराला का स्वर विधवंसकारी नहीं है। वे अमीरों की हवेली में किसानों की पाठशाला खोलने का आह्वान करते हैं। इसे ही प्रतिरोध कहते हैं। वर्चस्व को तोडकर नए सृजन का निर्माण करना। इसी तरह महादेवी वर्मा अपनी कविता में स्त्री अस्मिता को बचाए रखने के लिए प्रतिरोध करती हैं। जब महादेवी कहती हैं कि ''तोड़ दे यह क्षितिज मैं भी देख लूं उस ओर क्या है'' तो दरअसल वे समाज सत्ता एवं पितृसत्ता का एक साथ विरोध कर रही होती हैं। यहाँ क्षितिज को तोड़ने से तात्पर्य उस चहारदीवारी को तोड़ने से है जिसके भीतर घुट-घुटकर स्त्रियां जीने के लिए विवश हैं। और जब महादेवी कहती हैं कि 'उस ओर क्या है' इसे 'मैं भी' देखना चाहती हूँ तो वे पुरुषों से स्त्रियों की बराबरी की मांग कर रही हैं। यानी कि जिस चीज को देखने, सुनने, कहने और करने का अधिकार सिर्फ पुरुषों के पास था उसे महादेवी स्त्रियों के लिए भी सुलभ कराना चाहती हैं।

प्रतिरोध की यह परम्परा प्रगतिवाद में आकर पहली बार संगठित रूप में दिखलाई पड़ती है। इसका कारण यह था कि प्रगतिवाद को मार्क्सवाद के रूप में एक सुचिन्तित तथा सुस्पष्ट विचारधारा मिल गई थी। प्रगतिवाद ने दुनिया को बदलने की बात की। प्रगतिवादी कविता में शोषक तथा पूँजीपति वर्गों से घृणा तथा शोषित किसन-मजदूर वर्गों से सहनुभूति प्रकट किया गया है। प्रगतिवादी कविता का लक्ष्य था समाज में शोषण का अन्त होना चाहिए और देश में साम्यवादी सरकार होनी चाहिए। इसके लिए वे क्रांति का भी सहारा लेते हैं। प्रगतिवाद के उदय की पृष्ठभूमि में डॉ. नामवर सिंह ने कहा है कि ''सन् 30 तक आते-आते हिन्दुस्तान की राष्ट्रीय संस्था कांग्रेस में वामपंथी दल कायम हो गया था, स्वयं कांग्रेस के भी प्रस्तावों में हिन्दुस्तान के श्रमजीवी जन-समूह की चर्चा होने लगी थी। किसान मजदूर आंदोलन में काफी ताकत आ गयी थी। तत्कालीन साहित्य पर भी इस राजनीतिक जागरण की छाया दृष्टिगोचर होने लगी थी।''[19] प्रगतिवाद के संगठित प्रतिरोध के स्वर को केदारनाथ अग्रवाल की कविता की पंक्तियों में देखा जा सकता है- ''सौ हाथों के एका का बल बहुत बड़ा है/हम पहाड़ को भी उखाड़ कर रख सकते हैं/जमींदार यह अन्यायी है/कामकाज सब करवाता है/पर पैसे देता है छै ही।''[20] प्रगतिवादी कविता का प्रतिरोध क्रांति का सीधा आह्वान करता है। जनकवि नागार्जुन 'प्रतिहिंसा' और प्रतिबद्धता की खुली घोषणा करते हुए कहते हैं ''प्रतिहिंसा ही स्थायी भाव है मेरे कवि का/जन-जन में जो ऊर्जा भर दे, उदगाता हूँ उस रवि का।''[21] यहाँ बादल के घिरने से तात्पर्य जनक्रांति के उभार से है।

प्रगतिवाद के पश्चात् प्रयोगवाद और नई कविता में प्रतिरोध का स्वर अन्तर्मुखी हो जाता है। प्रयोगवाद और नई कविता में घोर व्यक्तिवादिता के चलते उसमें अकेलापन, हताशा, पराजय, घृणा एवं आत्महत्या की अभिव्यक्ति हुई है। डॉ. रामविलास शर्मा कहते हैं ''नयी कविता ने अपने भावबोध और उपमानों का ऐसा कल्पनालोक रच लिया है जो छायावाद से कहीं ज्यादा काल्पनिक और रीतिवाद से कहीं ज्यादा रूढ़िबद्ध है''[22] बावजूद इसके नई कविता में मुक्तिबोध अकेले कवि

हैं जो प्रतिरोध के लिए आत्मसंघर्ष करते हैं।

संदर्भ ग्रंथः-

1. New Disctionary of the History of Ideas Vol. 5, page 2103 Editor in Chief, Maryanne Cline Horowitz.
2. The New Encyclopedia Britannica, Vol.9, page 1039, 15th Edition, The University of Cicago by Encyclopedia Britannica U.S.A.
3. रामचन्द्र वर्मा (सं.) लोक भारती वृहत प्रमाणिक हिंदी कोश
4. रामचन्द्र शुक्ल 'हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ. 20 से उद्धृत, कमल प्रकाशन दिल्ली, नवीन संस्करण
5. संपादक द्वय हजारी प्रसाद द्विवेदी, विश्वनाथ त्रिपाठी 'संदेश रासक', राजकमल प्रकाशन, दूसरा संस्करण, पृ. 145
6. डॉ. रामविलास शर्मा 'हिन्दी जाति का इतिहास', राजपाल एंड संस, दिल्ली, दूसरा संस्करण 1992, पृ. 140
7. रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, कमल प्रकाशन, दिल्ली, नवीन संस्करण, पृ. 49
8. रामविलास शर्मा, 'भारतीय सौंदर्य बोध और तुलसीदास' साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2001, पृ. 447
9. सं. निर्मला जैन 'समीक्षा दशक' हिंदी अकादमी, दिल्ली, प्रथम संस्करण 1992, पृ. 227
10. डॉ. रामविलास शर्मा, 'भारतीय सौंदर्यबोध और तुलसीदास', पृ. 447
11. डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी 'हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, लोकभारतीय प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण 2004, पृ. 56
12. डॉ. बच्चन सिंह, 'हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास' राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली, संस्करण 2000
13. सं. ओमप्रकाश सिंह, 'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ग्रंथावली'-1, प्रकाशन संस्थान दिल्ली, प्रथम संस्करण 2008, पृ. 114
14. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल 'हिन्दी साहित्य का इतिहास', पृ. 401
15. डॉ. नगेन्द्र 'हिंदी साहित्य का इतिहास' मयूर पेपर बैक नोएडा, संस्करण 2004, पृ. 489 से उद्धृत
16. डॉ. नामवर सिंह, 'छायावाद' राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2004, पृ. 18
17. जयशंकर प्रसाद 'कामायनी' विक्रम प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 1990, पृ. 35
18. सं. रामविलास शर्मा, निराला राग-विराग, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, नवीन संस्करण 2005, पृ. 100
19. डॉ. नामवर सिंह, 'आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ', लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, नवीन संस्करण 2005, पृ. 62
20. सं. अशोक त्रिपाठी, कहें केदार खरी-खरी, परिमल प्रकाशन इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 1983, पृ. 21
21. wordpress.com के 'कविता निधि' से उद्धृत
22. रामविलास शर्मा 'नई कविता और अस्तित्ववाद' राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, छात्र संस्करण 1993, पृ. 131

रामचरण पाण्डेय, शोधार्थी, हिन्दी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय।

✧ ✧ ✧

भारतीय चिंतन के कवि कुँवर नारायण

शिवनारायण

लगभग छः दशकों तक साहित्य की सेवा करने वाले कुँवर जी का मन मुख्यतः और तत्वतः कविता में रमता था। वे कविता को बहुत गंभीरता से लेते। अपनी डायरी में उन्होंने लिखा भी है-'एक कविता होती है जीवन के बारे में और एक कविता होती है जीवन में प्रवेश कर जाने वाली।' वे कविता की एक ऐसी दुनिया सिरजते, जहाँ मन और विवेक की प्रत्येक दशा में विचरण करने वाला मनुष्य उनकी कविता की लौ से अपनी आत्मा की जिजीविषा को प्रकाशित कर लेता!

भारतीय कवि कुँवर नारायण नहीं रहे! बीते बुधवार को ही आभासी संसार में फैली इस सूचना से मैं सन्न रह गया! हालाँकि यह खबर मेरे लिए अप्रत्याशित नहीं थी। लंबे समय से वह अस्वस्थ चल रहे थे। उम्र का दवाब और व्याधियों की मार ने उनके शरीर को पस्त कर दिया था। लेकिन जब से वह कोमा में गए, उनके शुभैषियों को किसी भी समय अनहोनी सूचना मिलने की आशंका सताने लगी थी। अन्ततः १५ नवम्बर, २०१७ को उनके पार्थिव शरीर ने इस असार संसार का त्याग कर दिया। वांछित सूचना होने के बावजूद कुँवर जी के निधन से मन उदासियों में डूब गया। कुँवर जी का होना भारतीय कविता में चिंतन और दर्शन के धरातल पर जीवन की मूल्यपरक ;जु आख्या में हमारे लिए तरना था। कविता में स्वयं को जीने-समझने की यह ऋजु विरासत थम गई। कुँवर जी की ही 'वाजश्रवा के बहाने' में आई पंक्तियों के ब्याज से कहूँ, तो 'तुम्हें खो कर मैंने जाना/हमें क्या चाहिए-कितना चाहिए/क्यों चाहिए संपूर्ण पृथ्वी?/जबकि उसका एक कोना बहुत है। देह बराबर जीवन जीने के लिए/और पूरा आकाश खाली पड़ा है/एक छोटे-से अहं से भरने के लिए!'

१६ सितम्बर, १६२७ ई. को उत्तर प्रदेश के फैजाबाद में जन्में कुँवर जी ने हालाँकि लखनऊ विश्वविद्यालय से १६५१ में अंगरेजी साहित्य से एम.ए. किया, लेकिन अपना वृहत्तर चिंतन-सृजन उन्होंने हिन्दी में ही किया। पढ़ाई

के तुरंत बाद वे अपने पुश्तैनी ऑटोमोबाइल व्यवसाय में लग गए थे; लेकिन आचार्य कृपलानी, आचार्य नरेन्द्र देव, सत्यजीत राय आदि की संगति से प्रभावित होकर साहित्य में उनकी दुनिया बनने-बढ़ने लगी थी। वे साहित्यकार के अलावे सिनेमा और संगीत में भी समान दखल रखते थे। 'चक्रव्यूह' उनका पहला काव्य-संग्रह है जो १९५६ में प्रकाशित हुआ। उसी अवधि में 'युग चेतना' नामक पत्रिका का सह संपादन भी किया। १९५९ ई. में अज्ञेय द्वारा संपादित 'तीसरा सप्तक' में उन्हें शामिल किया गया, जिससे संपूर्ण काव्य-संसार का ध्यान उनकी ओर गंभीरता से आकृष्ट हुआ। इसके बाद 'परिवेश : हम-तुम' (१९६१), 'आमने सामने' (१९७९), 'कोई दूसरा नहीं' (१९९३), 'इन दिनों' (२००२), 'हाशिए का गवाह' (२००९) जैसे काव्य-संग्रह के साथ-साथ दो खंडकाव्य 'आत्मजयी' (१९६५), 'वाजश्रवा के बहाने' (२००८), कथा-संग्रह 'आकारों के आसपास' (१९७१), निबंध-संग्रह 'आज और आज से पहले' (१९९८), 'मेरे साक्षात्कार' (१९९९), व्याख्यानों का एक संग्रह 'साहित्य के कुछ अंतर विषयक संदर्भ' (२००३) आदि पुस्तकें प्रकाशित हुई। अपने सृजनकर्म के लिए वे अनगिन सम्मानों से विभूषित किए गए, जिनमें हिन्दुस्तानी एकेडमी पुरस्कार (१९७१), प्रेमचंद पुरस्कार (१९७३), उ.प्र. हिन्दी संस्थान पुरस्कार (१९८७), शतदल पुरस्कार (१९९५), साहित्य अकादेमी पुरस्कार (१९९५), लोहिया सम्मान (२००१), कबीर सम्मान (२००१), हिन्दी अकादेमी का शलाका सम्मान (२००६), उदयराज सिंह स्मृति सम्मान (२००६), ज्ञानपीठ पुरस्कार (२००६), पद्मभूषण सम्मान (२००६) आदि प्रमुख हैं। अनेक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मानों यथा वार्सा विश्वविद्यालय, पोलैंड का मानद पदक, महत्त्वपूर्ण विदेशी लेखक के रूप में इटली का प्रीमियो फेरोनिया पुरस्कार आदि से भी समलंकृत किए गए। कुँवर जी का भारत में जितना सम्मान और अनुवाद हुआ, उससे कहीं ज्यादा वे विदेशी भाषाओं में अनूदित होकर पढ़े-समझे गए। भारत में साहित्य अकादेमी ने उन्हें अपनी वृहत्तर सदस्यता प्रदान कर भी समादृत किया।

लगभग छः दशकों तक साहित्य की सेवा करने वाले कुँवर जी का मन मुख्यतः और तत्वतः कविता में रमता था। वे कविता को बहुत गंभीरता से लेते। अपनी डायरी में उन्होंने लिखा भी है-'एक कविता होती है जीवन के बारे में और एक कविता होती है जीवन में प्रवेश कर जाने वाली।' वे कविता की एक ऐसी दुनिया सिरजते, जहाँ मन और विवेक की प्रत्येक दशा में विचरण करने वाला मनुष्य उनकी कविता की लौ से अपनी आत्मा की जिजीविषा को प्रकाशित कर लेता! मेरा उनसे पहला परिचय १९९३ में उनके काव्य-संग्रह 'कोई दूसरा नहीं' की कविताओं से ही हुआ। उनकी कविताएँ आतंकित नहीं करतीं, बल्कि अपनी ऊर्जा से मन-प्राणों को ऊर्जस्वित ही करतीं। उस संग्रह के बाद मैं उनकी कविताएँ खोज-खोजकर पढ़ता। कहना चाहिए कि उनकी कविताई ने ही मेरे अंदर के कवि-मन को खुलने-खिलने का अवकाश दिया। उनको पढ़ते हुए हमेशा उनसे मिलने की इच्छा बलवती होती रही। कायदे से उनसे मिलने का अवसर मुझे २००८ में मिला।

दिसम्बर, २००८ की एक सर्द शाम थी वह, जब अपने दिल्ली प्रवास में उनसे पहली बार मिलने का अवसर मिला। अपने मित्र डॉ. अमरनाथ अमर के साथ मैं कुँवर जी के चित्तरंजन पार्क

स्थित आवास पर उनसे मिलने गया था। उनकी पत्नी भारती जी ने दरवाजा खोल हमारा स्वागत किया था। ड्रॉईंग कमरे में उनकी प्रतीक्षा करते हुए पहली नजर में ही उनके कमरे की सादगी भरी गरिमा से प्रभावित हुआ था। उस शाम कोई घंटे भर कुँवर जी के साथ रहा। लगा ही नहीं कि उनसे पहली बार मिला! उनकी आत्मीयता और उनके व्यक्तित्व की सादगी का गांभीर्य हमें गहरे स्नेहपाश में बाँध गया था! उनकी कविताओं, कहानियों, सिनेमा-संगीत से संबंधित लेखन सहित अनेक मुद्दों पर बातचीत हुई थी। पटना की चर्चा आई तो उन्होंने कहा- 'बहुत पहले जब मैं 10-12 सालों का रहा होऊँगा, तब पहली बार अपने मामा के यहाँ पटना गया था। वहीं पटना सिटी में जालान संग्रहालय के निकट कहीं मेरे मामा का घर था। तब अक्सर वहाँ गंगा घाट तक घूमने जाया करता। तभी मेरे मामा मुझे नालंदा, राजगृह, पावापुरी आदि स्थानों में घुमाने ले गये थे। अब पटना की कोई स्मृति मेरे जेहन में नहीं है। उसके बाद कभी पटना गया भी नहीं।' कहते-कहते जैसे किसी शून्य में वे खो जाते। मेरे मांगने पर उन्होंने 'नई धारा' के लिए अपनी कविताएँ भी दी थीं। उस पहली मुलाकात के बाद भी उनसे कई बार मिला, लेकिन हर मुलाकात में उससे पहली मुलाकात की बातें वे बिसर जाते। मिलते ताजगी से थे और हर मिलने में उनकी पत्नी की सहायता से आत्मीयता भी भर जाती थीं। उनसे जब भी मिला, जाने क्यों मुझे लगता कि मैं किसी कवि से नहीं बल्कि दार्शनिक से मिल रहा हूँ। उनसे हुई बातें-यादें किसी गहरे चिंतन की ओर ले जाती और मैं खुद को अपने कद से बड़ा महसूस करने लगता।

'नई धारा' की ओर से उन्हें २००६ में तीसरा उदयराज सिंह स्मृति सम्मान दिए जाने का सर्वसम्मत निर्णय लिया गया। इस सम्मान के तहत साहित्यकार को एक लाख रुपए सहित सम्मान-पत्र एवं स्मृति चिह्न अर्पित किया जाता रहा है। 'नई धारा' की ओर से मैं इस सम्मान की सूचना देने दिल्ली गया। डॉ. अमर के साथ एक शाम जब उनके आवास पर पहुँचा, झीमी झीमी बारिश हो रही थी। उस शाम उन्होंने स्वयं दरवाजा खोला था। चाय पीते हुए जब उन्हें 'नई धारा' के सम्मान की सूचना दी, तो एक प्रकार के वीतराग भाव के साथ उन्होंने अपनी सहमति देते हुए कहा था कि अच्छा है, कम से कम इस बहाने बिहार घूमने का अवसर मिल पाएगा।' फिर वे 'नई धारा' पत्रिका और सम्मान की पृष्ठभूमि पर चर्चा करते रहे। पत्रिका की समृद्ध विरासत और हिन्दी की साहित्यिक पत्रकारिता से उसके जुड़ाव की जानकारी पाने के बाद बोले - 'बिहार में मेरे अनेक साहित्यिक मित्र हैं... अरुण कमल हैं, नंदकिशोर नवल हैं और भी बहुत से लोग हैं, पर आज तक मुझे वहाँ किसी ने बुलाया नहीं है। आपके और 'नई धारा' के कारण पहली बार बिहार जाना हो पाएगा...।' इस बीच डॉ. अमर ने उन्हें नालन्दा, पावापुरी, राजगीर, बोधगया, वैशाली आदि की ऐतिहासिकता की जानकारी देते हुए पटना के साहित्यिक वैभव की जानकारी दी, तो वे बोल उठे - 'हाँ, उनमें कई जगहों को मैंने बचपन में देख रखा है।' फिर मेरी ओर मुखातिब होकर बोले - 'एक बार नालन्दा देखने की इच्छा है। मुझे नालन्दा और पटना में जालान संग्रहालय जरूर दिखाइयेगा।' मैंने सहर्ष कहा - 'क्यों नहीं? आप कम से कम चार दिनों की पटना यात्रा का कार्यक्रम बनाइयेगा।

बिहार की पुरानी विरासत और नए वैभव से हम आपको रुबरु करवायेंगे।' इसके बाद वे नालन्दा, बोधगया आदि पर लिखी अपनी कविताओं की चर्चा करने लगे। एकाएक मुझसे पूछा – 'आप आयोजन कब करेंगे?' मैंने कहा – 'अब आपकी सहमति मिल गई है, तो अगले १ अगस्त को 'नई धारा' के सम्मानों की घोषणा होगी, फिर ५ नवम्बर को सम्मान अर्पण समारोह होगा।' उन्होंने कहा, 'सही समय रहेगा। नवम्बर में यात्रा करने में मुझे कोई असुविधा नहीं होगी । मैं पत्नी, बेटे के साथ आऊँगा।'

उस शाम कोई दो–ढाई घंटे उनके साथ बिताने के बाद मैं लौट आया था। यथासमय 'नई धारा' के सम्मानों की घोषणा हो जाने के कोई एक सप्ताह बाद एक दिन कुँवर जी का फोन आया। उन्होंने मुझसे दिल्ली आकर मिल लेने को कहा। उनकी आवाज का टोन सहज नहीं था। बाद में मैंने फोन कर डॉ. अमर को कुँवर जी से हुई बातचीत की सूचना दी, तो उन्होंने कहा – 'हाँ, मेरे पास भी उनका फोन आया था। पटना से किसी ने ोन कर उन्हें 'नई धारा' का पुरस्कार नहीं लेने की सलाह देते हुए कहा है कि यह भाजपाई परिवार की पत्रिका है। वे द्वंद्वमें हैं। आप एक बार दिल्ली आकर उनसे मिल लीजिए।' अमर जी की बातों ने मुझे तनाव में ला दिया था। दो दिनों तक मैं यही सोचता रहा कि आखिर पटना में 'नई धारा' के खिलाफ कौन हो सकता है? अभी दो–तीन सालों पहले ही तो 'नई धारा' की तरु से पुरस्कारों की शुरुआत की गई थी। मैं नहीं चाहता था कि अपने आरंभिक काल में ही यह विवादों में आए। चयन प्रक्रिया को लेकर मैं बहुत सतर्क रहा करता था और हर हाल में योग्यतम व्यंक्तियों को ही पुरस्कार दिए जाने का मैं भाव रखता था। उन दिनों अक्सर मैं कुँवर जी की पुस्तक 'वाजश्रवा के बहाने' की कविताएँ पढ़ा करता था, जो पिछली मुलाकात में उन्होंने मुझे भेंट की थी। तनावों के क्षण में अचानक से उनकी कुछ पंक्तियाँ मेरे मानस में कौंधी थी – 'बचना होता है ऐसे सामीप्य से/जो नष्ट कर दे दो संसारों को/ जो बदल दे निकटता के अर्थ को/ एक घातक विस्फोट में...।' अचानक से मेरे मानस में आई इन पंक्तियों ने मेरे द्वंद्वको साफ कर दिया था। आनन–फानन में मैंने अपना दिल्ली जाने का कार्यक्रम बना लिया था।

दिल्ली में जिस शाम कुँवर जी से मिला, वे अपने विदेशी मेहमानों से घिरे थे। सहज औपचारिकता के बाद उन्होंने मुझसे सीधे प्रश्न किया – 'ये 'नई धारा' वाले क्या भाजपायी परिवार से आते हैं?' मैने तत्क्षण कहा – 'जहाँ तक मेरी जानकारी है, इस परिवार का दूर–दूर तक भाजपा से कोई रिश्ता नहीं रहा है। हाँ, यह कांग्रेसी परिवार जरूर रहा है। उदयराज सिंह जी के बड़े भाई वर्षों कांग्रेस के सांसद रहे। स्वयं राज राधिकारमण प्रसाद सिंह भी कांग्रेस से जुड़े रहे थे।' इस कथन के साथ ही मैंने उदयराज सिंह जी से प्राप्त जानकारी के आधार पर उस परिवार की वैचारिकी से कुँवर जी को अवगत कराया। मेरी बातों से वे प्रसन्न हुए। लगा, उनके भीतर का धुंध साफ हो गया! उस शाम मैंने उन्हें 'नई धारा' का लघुकथा विशेषांक भेंट किया, तो वे बोले – 'मैंने भी लघुकथाएँ लिखी हैं। कभी आपको दूँगा।' की देर तक उनसे तथा उनके दो–एक मेहमानों से बातें होती रहीं। कोई घंटे भर उनके साथ रहा, लेकिन पटना से किसने क्या कहा उनसे, इसका आभास तक उन्होंने

नहीं दिया। अंततः उनकी आत्मीयता से सराबोर हो मैं वापस लौटा था।

'नई धारा' द्वारा कुँवर जी को 'उदयराज सिंह स्मृति सम्मान' दिए जाने की घोषणा के कुछ दिनों बाद ही उन्हें ज्ञानपीठ सम्मान दिए जाने की घोषणा पर उन्हें बधाई दी, तो उन्होंने सहज भाव में कहा था – 'सम्मान समारोह में आप जरूर आइयेगा!' उनकी आवाज सुनकर मेरे कानों में उनकी ही पंक्तियाँ बजने लगी थीं – 'वह लौट आया है आज/ जो चला गया था कल/वही दिन नहा-धोकर/फिर से शुरू हो रहा है/सृष्टि का पहला पहला दिन!' वे कुछ कहते तो जैसे वे ही सारे शब्द संगीत बनकर रह-रहकर बजने लगते! अज्ञेय को पढ़ते हुए भी कुछ ऐसा ही अहसास होता! उनके शब्दों की ध्वनि-व्यंजना शब्द के साथ नहीं बल्कि उसके बाद रह-रहकर अपना अर्थ खोलते! एक बार किसी प्रसंग में कुँवर जी ने मुझसे कहा था – 'कविता जितना कुछ जीवन के बारे में कहती है, उससे कहीं अधिक उस भाषा को ही एक सार्थक रचनात्मक अनुभव बनाकर कहती है, जिस भाषा में वह काव्य-रचना करती है। इसलिए रचनात्मक ऊर्जा विस्फोटक होती है।' उनकी बातों को सुनते हुए जाने क्यों मुझे लगता कि रचनात्मक ऊर्जा का विस्फोट कवि के जीवन, प्रकृति और सृष्टि के प्रति अटूट साधना का भी प्रतिफल हो सकता है! सामान्य से सामान्य मनुष्य को मनुष्यता की गरिमा के साथ प्रतिष्ठा देते हुए उससे साहचर्य-संवाद करना अज्ञेय और कुँवर जी जैसे कवियों के लिए ही संभव था। तभी तो अपनी कविता में कुँवर जी कहते हैं- 'बजाने से बजता है शून्य भी/जैसे ढोल में बंद नाद/ब्रह्म हो जाता है!'

कुँवर जी सन् 2009 के अक्टूबर में ज्ञानपीठ सम्मान से विभूषित किए गए और नवम्बर के आरंभ में 'नई धारा' द्वारा देय सम्मान ग्रहण करने सपत्नीक पटना आए थे। मुझे ४ से ७ नवम्बर चार दिनों तक उनका सत्कार करने का अवसर मिला था। उनके ठहरने की व्यवस्था मैंने बोरिंग रोड स्थित केन्द्रीय औद्योगिक सुरक्षा बल के अतिथिशाला में की थी। बाहर से आए अन्य सम्मानित होने वाले लेखकों को भी वहीं ठहराया था। आयोजन ५ नवम्बर को बोरिंग रोड स्थित 'सूर्यपुरा हाउस' परिसर में ही सम्पन्न होना था, जहाँ से 'नई धारा' का प्रकाशन-संपादन होता। वास्तव में यह राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह का आवास रहा है। यहीं उदयराज सिंह जीवन पर्यन्त रहे। पटना में 'सूर्यपुरा हाउस' एक प्रकार से साहित्य का तीर्थ ही बना रहा है। इस परिसर में इसके आरंभिक काल से ही जाने कितने ही साहित्यिक आयोजन होते रहे, जिसमें शामिल होने देश-विदेश से लेखक आते रहे! कुँवर जी आयोजन से एक दिन पहले ही आ गए थे। उनके पुत्र को भी साथ आना था, अंत समय में किसी कारणवश उनकी यात्रा टल गई थी। एयरपोर्ट से अतिथिशाला पहुँचने तक वे रास्तों में दिख रहे एक-एक भवन, स्थल आदि के बारे में रुचि ले-लेकर पूछते जाते, जैसे पूरे शहर को वे जीना चाहते हों! रास्ते में पड़ने वाले चिड़ियाघर, राजभवन, मुख्यमंत्री आवास, सचिवालय की इमारतें, पटना हाईकोर्ट, एक-एक भवन के बारे में जानकर वे उस पर अद्‌भुत टिप्पणी करते! अतिथिशाला में पहुँचने के उनके घंटे-डेढ़ घंटे बाद ही एक लेखक का मेरे पास फोन आया था – 'कुँवर नारायण जी कहाँ ठहरे हैं?' मैंने उन्हें पूरा पता समझा दिया तो बोले –

'कल आकाशवाणी में उनका एक इन्टरव्यू मुझे करना है। क्या उन्हें आकाशवाणी पहुँचाने की व्यवस्था आप करवा सकते हैं?' उनकी बात सुनकर मैं विस्मित रह गया। इस संदर्भ में उनसे पहले से कोई बात नहीं हुई थी। मैंने कहा – 'कल समारोह हो जाने दीजिए, फिर परसों देखते हैं।' वे नाराज हो गए। बोले – 'आप कुँवर जी को बंद करके क्यों रखना चाहते हैं? उन्हें पूरे बिहार के साहित्य प्रेमियों को सुनने दीजिए। मैं शाम को उनसे मिलने आता हूँ।' कहने के साथ ही उन्होंने फोन काट दिया। शाम वह सचमुच अतिथिशाल पहुँच गए थे। उस समय कुँवर जी के आतिथ्य में युवा कहानीकार कलानाथ मिश्र थे। मिश्र जी ने उनसे कहा – 'अभी कुँवर जी आराम कर रहे हैं। आप उनसे नहीं मिल सकते।' मिश्र जी के इतना कहते ही वह उनसे उलझ पड़े। जोर-जोर से कहने लगे- 'तो आप उन्हें कैद करके रखना चाहते हैं?' मिश्र जी बोले – 'कैद करके रखना होता तो उनके सम्मान में समारोह क्यों करते?आप कल उनसे जी भर मिल लीजिएगा।' वे कुपित होकर बोले- 'मुझे कल सुबह ही आकाशवाणी के लिए उनका इन्टरव्यू करना है।' मिश्र जी ने कहा – 'आपने पहले से आयोजक से कोई बातचीत तो नहीं कर रखी थी...।' उनकी बात पूरी नहीं हो पाई थी। तब तक कुँवर जी नीचे बैठक में आ चुके थे। पूरी बात सुनने के बाद उन्होंने उस लेखक से कहा था – 'आपने आकाशवाणी पर मुझसे बात करने की पहले से कोई अनुमति तो नहीं ले रखी थी, फिर अचानक ये सब क्यों तय कर लिया? वैसे भी जिनके आमंत्रण पर पटना आया हूँ, उन्हीं के अनुशासन पर मेरा कोई भी कार्यक्रम तय होगा।' उस लेखक से पूर्व परिचित होने के बावजूद उन्होंने विनम्रता से उनके कार्यक्रम में जाने से मना कर दिया था। बाद में मुझे जब ये सब पता चला तो उनकी महानता का कायल हुआ। वे धीरे बोलते, पर उनके कथन में दृढ़ निश्चय एवं अनुशासन की सख्ती होती। उसी रात मेरे पास एक जनवादी लेखक का फोन आया था, जिनकी बातों से पता चला कि कुछ लोग कुँवर जी को सुबह आकाशवाणी के एक कार्यक्रम में ले जाने के बहाने उन्हें अगली शाम 'नई धारा' के आयोजन के खिलाफ भड़काना चाहते थे। वे चाहते थे कि कुँवर जी आयोजन में न जाएँ और जाएँ भी तो कुछ ऐसा बोल दें जिससे 'नई धारा' की प्रतिष्ठा धूमिल पड़ जाए। इस साजिश में आकाशवाणी के एक कार्यक्रम अधिशासी को मिला लिया गया था, जो वहाँ साहित्य का कार्यक्रम देखते थे और खुद भी लेखक थे। कुँवर जी की दृढ़ता ने उस साजिश को फलित होने नहीं दिया था।

५ नवम्बर की शाम 'सूर्यपुरा हाउस' परिसर में सम्मान अर्पण समारोह हुआ। उन्हें स्मृतिशेष उदयराज सिंह की पत्नी धर्मशीला सिन्हा के हाथों 'उदयराज सिंह स्मृति सम्मान' से विभूषित किया गया था। बाद में अपने 'साहित्य और आज का समाज' विषयक व्याख्यान करते हुए उन्होंने कहा था कि 'भारत का सामाजिक यथार्थ अत्यंत जटिल, विविध, बहुस्तरीय और रुढ़िबद्ध है। भारतीय समाज बदल रहा है, लेकिन इतनी तेजी से नहीं कि यहाँ की सामाजिक चेतना के विस्तार को बदल दे। इससे पहले और तेजी से बाजारवाद और उपभोक्ता संस्कृति जैसी शक्तियाँ ही सामाजिक चेतना को बदल रही है।' मुझे याद है, उस शाम अपने सारगर्भित व्याख्यान में अपनी बातों को तार्किक

बनाते हुए उन्होंने कहा था कि 'मेरी बात से यह नकारात्मक निष्कर्ष निकालने की जल्दी न की जाए कि मैं औद्योगिक प्रगति को एक सिरे से खारिज कर रहा हूँ। उसके लाभ भी सब तक पहुँच रहे हैं जिन्हें नजरअंदाज नहीं किया जा सकता – लाभ, जो हमें एक बेहतर जिन्दगी दे रहे हैं। मेरी कोशिश सिर्फ उस असंतुलन की ओर ध्यान खींचना है जो आज के समाज में सारी प्रगति के बावजूद, एक गहरा असंतोष, विसंगति और विषमता भी पैदा कर रहा है।' पटना के बौद्धिक एवं साहित्यिक श्रोता समाज में कुँवर जी के व्याख्यान ने व्यापक प्रभाव डाला था। समारोह की अध्यक्षता समालोचक डॉ. खगेन्द्र ठाकुर ने की थी। उन्होंने अपने अध्यक्षीय भाषण में 'नई धारा' परिवार की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए कहा था – 'आज का समाज जितना जटिल और द्विधाग्रस्त है, उसके गर्भ से उतना ही उत्कृष्ट साहित्य का सृजन हो रहा है और उस चेतना का सरस प्रवाह 'नई धारा' में दिखाई पड़ता है।' उस आयोजन में पटना ही नहीं, आसपास के अनेक शहरों से रचनाकारों की भारी उपस्थिति वहाँ मौजूद थीं। उस वर्ष कुँवर जी के साथ कथालेखिका नासिरा शर्मा, व्यंग्यकार बालेन्दुशेखर तिवारी और युवा कवि राधेश्याम तिवारी को भी 'नई धारा रचना सम्मान' से सम्मानित किया गया था। नासिरा जी अपने पति की गंभीर बिमारी के कारण नहीं आ पाई थी। उन्होंने एक मार्मिक पत्र भेजा था। समारोह के कोई सप्ताह भर बाद ही उनके पति प्रोफेसर आर.सी. शर्मा का १३ नवम्बर, २००६ का अंतत: निधन हो गया!

समारोह संपन्न होने के बाद उस रात जब मैं अतिथिगृह में पहुँचा, तो वे बहुत प्रसन्न मन से मिले। मेरे साथ भाई कलानाथ मिश्र और राधेश्याम तिवारी भी थे। उस रात देर तक वे 'नई धारा' के प्रधान संपादक एवं उदयराज सिंह के पुत्र प्रमथराज सिंह एवं उनके पूरे परिवार की आत्मीयता की चर्चा करते रहे। आज मैं ठीक से याद नहीं कर पा रहा, जाने उस रात किस प्रसंग के छिड़ने पर अकस्मात बोल उठे थे – 'खगेन्द्र जी तो 'नई धारा' और उसके पूरे परिवार की अपने अध्यक्षीय भाषण में काफी प्रशंसा कर रहे थे, जबकि उनके ही एक मित्र ने उनके ही हवाले से मुझे बहुत पहले यह जानकारी दी थी कि यह भाजपायी परिवार की पत्रिका है।' उनके इस कथन से मैं चौंक उठा था! मुझे महीनों पुरानी स्मृतियाँ याद आने लगी थीं। मैंने बहुत कोशिश की, कि वे उस व्यक्ति का नाम बता दें, पर वे मेरी हर कोशिश को टाल देते! 'नई धारा' के आयोजन को बिगाड़ने की एक-एक अलक्षित कोशिशों को लक्षित करने की स्मृति मन में घुमड़ती रही! कुँवर जी ने संकेतों में ही बहुत-सी सांघातिक बातें बता दी थीं। अगली सुबह कलानाथ जी कुँवर जी और उनकी पत्नी को गंगा-दर्शन कराने ले गए थे। वहाँ से अतिथिगृह लौटे तो दो लेखक कुँवर जी को आकाशवाणी ले जाने के लिए वहाँ उपस्थित थे। कुँवर जी ने उन दोनों से कहीं-जाने से साफ मनाही कर दी। मैं कुँवर जी को लेने ११ बजे उनके पास पहुँचा था। उस दिन सोनभवन स्थित स्काडा बिजनेस सभागार में उनका एकल काव्यपाठ होना था। उन्हें लेकर ११:३० बजे के लगभग स्काडा सभागार पहुँचा तो शहर के लेखकों-प्रशंसकों से वह खचाखच भरा था। गया से आए वयोवृद्ध कवि गोवर्द्धन प्रसाद सदय की अध्यक्षता में उस आयोजन में प्रथमत: कवि राधेश्याम तिवारी के सद्य: प्रकाशित

काव्य-संगह 'इतिहास मे चिड़िया' का लोकार्पण कुँवर जी ने किया था। उसके बाद उन्हें एकल काव्यपाठ करना था, लेकिन पत्रकारों की भीड़ ने उन्हें घेर लिया। करीब दस मिनट तक वे पत्रकारों के सवालों का जवाब देते रहे थे। उसके बाद कवि निविड़ शिवपुत्र एवं राधेश्याम तिवारी ने अपनी दो-दो कविताएँ सुनाई थी। अब कुँवर जी के एकल काव्यपाठ की बारी थी। काव्यपाठ से पूर्व अपने रचनाकर्म पर संक्षिप्त टिप्पणी दी थी, रि अपनी १५—१६ कविताओं का पाठ किया था। मुझे आज भी याद है कि अपनी कविताओं में उन्होंने; 'नालन्दा और बख्तियारपुर'; 'अमीर खुसरों', 'सरहपा', 'नाजिर हिकमत के साथ', 'पालकी', 'अबकी लौटूँगा वृहत्तर' आदि का सम्मोहक पाठ किया था। काव्यपाठ के बाद अपने दो-तीन काव्य-प्रशंसकों की जिज्ञासा का समाधान भी किया। आखिर में धन्यवाद ज्ञापन वरिष्ठ कवि परेश सिन्हा ने किया था। उस आयोजन के बाद कुँवर जी के सम्मान में प्रीतिभोज था, जिसमें अनेक प्रशंसकों से घिरे उन्होंने सपत्नीक भोजन किया था। भोजन के बाद वे अपने अतिथिगृह लौट गए थे।

शाम उनसे मिलने गया था। अगली सुबह उन्हें नालन्दा, राजगृह, पावापुरी दर्शन के लिए निकलना था। गाड़ी, गाईड आदि का प्रबंध कर उन्हें इसकी सूचना देने के साथ-साथ अन्य बातें भी उनसे करनी थी। जब उनके कमरे में पहुँचा, वे अखबार देख रहे थे। सभी अखबारों में उनके सम्मान ग्रहण करने की खबर फोटो के साथ छपी थी। मिलते ही बोले - 'आज के सभी अखबारों में आपके आयोजन की अच्छी खबर छपी है। यहाँ के अखबार साहित्य की खबरों को अच्छी जगह देते हैं। दिल्ली में ऐसा नहीं है, केवल 'जनसत्ता' को छोड़कर। जवाब में कलानाथ मिश्र ने कहा था - 'ये सब आपके व्यक्तित्व का प्रताप है सर!' तब तक उनकी पसंद के अनुसार नाश्ते की प्लेटें सज चुकी थी। थोड़ी देर में चाय भी आ गई। चाय पीते हुए उन्होंने कहा था - 'पटना में कविता सुनने-गुनने वाले बहुत हैं। काव्यपाठ का मेरा अनुभव अच्छा रहा। यहाँ आने से पहले मेरे मन में संशय था कि जाने मेरी कविताओं से लोग जुड़ भी पाएँगे या नहीं, लेकिन जब कविताएँ सुनानी शुरु की तो मैं श्रोताओं से जुड़ता चला गया।' मैंने कहा - 'पटना मैं आपके काव्यपाठ का क्षण ऐतिहासिक रहा। 'नालन्दा और बख्तियार' वाली कविता सुनते हुए तो मैंने अनेक श्रोताओं को रोमांचित होते देखा। अद्भुत कविता है वह। कल तो आप नालन्दा चलेंगे ही... वहां भी इस कविता का पाठ आप करेंगे तो हमें अच्छा लगेगा।' मेरी बात सुनकर जाने क्यों वे एकाएक-से चुप हो गए। एकदम ध्यानस्थ की मुद्रा में चले गए जैसे! सब एकटक उनकी ओर देखने लगे। थोड़ी देर की रहस्यमयी चुप्पी के बाद उन्होंने कहा- 'कल के नालन्दा भ्रमण का कार्यक्रम अब रहने दीजिए! कल दिन भर आराम करूँगा, फिर शाम को वापसी की "लाइट! इसके अलावे कल का सब कार्यक्रम रद्द कीजिए।' उनकी बात सुन मैं सन्न रह गया। ऐसी क्या गलती हो गई मुझसे! मैंने सशंकित स्वर में पूछा -'ऐसा क्यों? आपके भ्रमण की सारी तैसारी हो चुकी है। मुझसे कोई अपराध हुआ?' वे हौले से मुस्काये। उस मुस्कान में क्या था, कौन जाने! लेकिन बहुत कुछ था

उसमें, जो मैं समझ नहीं पाया। तब तक कलानाथ जी बोल उठे थे- 'पटना आकर बिना नालन्दा देखे लौट जाएंगे, तो आपको बहुत अफसोस होगा...।' इससे अधिक वे नहीं कह पाए थे, क्योंकि कुँवर जी ने बीच में ही कहा था- 'और यदि नालन्दा देख लिया तो कहीं मेरी सारी धरणाएँ खंड-खंड न हो जाएँ! नालन्दा-पावापुरी को लेकर अपने कल्पनालोक में मैंने जाने कैसी-कैसी धरणाएँ बना रखी हैं और ये बहुत पहले की बनी धरणाएँ हैं। नालन्दा घूमने के बाद जाने मेरी धरणाओं का क्या हो... नहीं-नहीं, रहने दीजिए। फिर कभी आना हुआ तो शायद नालन्दा देख पाऊँ। अभी तो मुझे अपनी ही बनी-बनाई धरणाओं में नालन्दा को जीने दीजिए।' अंततः कुँवर जी नालन्दा नहीं ही गए थे। जालान संग्रहालय भी देखने की इच्छा रखते थे, पर नहीं गए।

अगली सुबह मैं फिर उनसे मिलने गया था। सुबह का नाश्ता कलानाथ जी के घर पर था। उनके पिता साहित्य रसिक थे। शहर में कोई भी बड़ा लेखक आए, उनका सत्कार करना उन्हें प्रिय था। वे 'नई धारा' के प्रशंसक भी थे। कोई भी अंक उन्हें मिलता, एक-एक शब्द पढ़ जाते। फिर प्रत्येक रचना पर अपने विचार से अवगत कराते। एक जमाने में वे अजंता प्रेस चलाते थे, जहाँ से 'अवंतिका' पत्रिका निकलती थी। उस पत्रिका का अपना समृद्ध इतिहास रहा है। कुँवर जी को लेकर जब मैं उनके आवास पर पहुँचा, तो उनके स्वागत में पूरा परिवार हाजिर था। मेरे साथ उस दिन राधेश्याम तिवारी और डॉ. रामशोभित प्रसाद सिंह भी थे। करीब डेढ़ घंटे हम वहाँ रहे। मुझे याद है, कुँवर जी ने लखनऊ की अपने जमाने की बहुत-सी यादों के साथ-साथ अनेक निजी प्रसंगों की भी चर्चा की थी। शायद कलानाथ जी के बाबूजी ने कुँवर जी से पूछा था - 'आज के भागमभाग में, इस बाजारवादी युग में कविता से हमें क्या कुछ मिल सकती है, जिसके लिए हम कविता सुने या पढ़े? इस भाव पर आपने परसों 'नई धारा' के कार्यक्रम में बहुत अच्छा कहा था! अब भी आपकी बातें मेरे ध्यान में गूँज रही है। आप तो पुराने समय के कवि हैं, आज की कविता से आप क्या अपेक्षा रखते हैं?' किसी कवि को रसज्ञ पाठक मिल जाए तो शायद उनकी रचनाशीलता का द्वार खुल जाता है। कुँवर जी बोले थे - 'हम नई कोई चीज चाहते हैं तो बाजार की ओर दौड़ते हैं, लेकिन आत्मिक कुछ चाहते हैं तो कविता की ओर देखते हैं। प्रेम में, दुःख में, उदासी में, अकेलेपन में, मुसीबतों में, मुश्किलों में, बेबसी में, भावुक क्षणों में क्यों हमें अनायास याद आती हैं कविताएँ? वह अजीब-सा, रहस्यमय 'कुछ' जो हमें मिलता है सिर्फ कविता से, क्या वह हमें मिल सकत है बाजार से? मैं उस कविता-बराबर जरा-से 'कुछ' को पारिभाषित करना नहीं चाहता, चाहूँ भी तो नहीं कर सकूँगा। पर इतना जानता हूँ कि वह हमारी प्राणवायु की तरह सूक्ष्म है। उसके बिना हम जी नहीं सकते। वह एक सीमारहित, अपारिभाषित दुनिया है। नई पीढ़ी अपनी कविता में इसी 'सूक्ष्म' की साधना करे, तो उसकी रचना सार्थवती होगी।' उनकी बातें सुनकर हम विस्मित थे। अपनी कविता को लेकर जिस समृद्ध परम्परा से जुड़ रहे, नई पीढ़ी के लिए जैसे

उन्होंने परम्परा की अगली चौहद्दी बता दी थी। उनकी बातें सुनते हुए जाने क्यों मेरे मन में 'वाजश्रवा के बहाने' की पंक्तियाँ उमड़ने लगी थीं – 'तर्क से बहुत चिपक कर नहीं/जरा परे हटकर भी/देखना और सोचना जरूरी है/अपने समय को या फिर निकटताओं के बीच भी/जरूरी है, दूरियों के अंतराल/चमकने के लिए/जैसे दो शब्दों को जोड़ती हुई/खामोश जगहों से भी/बनता है भाषा का पूरा अर्थ/बनता है तारों भरा आकाश!' मुझे ध्यान आया कि उन्होंने कहीं स्वयं अपनी ही कविताओं के लिए लिखा भी है – 'मेरी कविताएँ तीखी-तर्रार रेखाओं से नहीं बनतीं। उनमें गाढ़े हल्के रंग के उमड़ते-घुमड़ते बादलों के-से आकार एक-दूसरे से घुलते-मिलते हैं।'

उस दिन सुबह कविता को लेकर कुँवर जी से जितनी बातें हुई, उनसे कविता को समझ पाने का एक सहज विवेक मिला। कुँवर जी की पुस्तकों को पढ़ते हुए मैंने पाया है कि उनकी कविताएँ आतंक पैदा नहीं करतीं, बल्कि जीवन की गुत्थियों को सुलझा पाने की कुंजी थमा देती हैं! वे कहते भी हैं कि रचनात्मक ऊर्जा विस्फोटक होती हैं। उसी दिन शाम की फ्लाइट से वे सपत्नीक दिल्ली लौट गए थे। अपने अनेक मित्रों के साथ उन्हें विदा करने मैं एयरपोर्ट गया था! जाते-जाते भी उनकी पत्नी ने कहा था – 'पटना में आपका आत्मीय आतिथ्य याद रहेगा।'

मैं जब भी दिल्ली जाता, उनसे मिलने की कोशिश करता। दो बार उनसे मिल पाया। फोन पर तो अक्सर उनसे बात होती। एक बार उन्होंने कहा – 'मैं यमुना के किनारे हूँ और आप गंगा किनारे! हमारा आपका मेल तो प्रयाग के संगम में ही हो सकता है।' मैंने जवाब में कहा था – 'मेरा संगम तो आपकी कविताएँ हैं, जिसमें अक्सर डुबकी लगाता हूँ।' मेरी बात सुन हौले-से मुस्करा देते! कहते- 'पटना में गंगा बहुत निर्मल है!' मैं विहँस उठता। सोचता, अच्छा है कि कुँवर जी पटना से निर्मल गंगा की छवि लेकर गए। उनकी यह धरणा भी नालन्दा की धरणा की तरह अखंडित रहे! लंबी बीमारी के बाद अब जब उनके निधन की सूचना मिली, तो मुझे उनकी ही पंक्तियाँ याद आई – 'मैंने नाप कर देखा है/किसी भी सिंहासन की नाप/एक खाट की नाप से/ज्यादा बड़ी नहीं होती।' सोचता हूँ, कुँवर जी अपने नश्वर जीवन से मुक्त हो गए, पर भारतीय कविता के जीवन से भी क्या वे मुक्त हो पाएँगे कभी! इस सोच के साथ ही उनकी एक पंक्ति मेरे मानस में अड़ जाती – 'मृत्यु से भी अधिक निर्मम हो सकता है अक्सर/जीवन का तर्क!'

डॉ. शिवनारायण, प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग, श्री अरविन्द महिला कॉलेज, काजीपुर, पटना–800004 (बिहार), चलभाष : 09334333509

✧ ✧ ✧

दुनिया का सबसे रूपवान डूबा हुआ आदमी

मूल लेखक :
गैब्रिएल गार्सिया मार्खेज़

अनुवाद :
सुशांत सुप्रिय

उस रात वे सब काम पर समुद्र में नहीं गए। जहाँ पुरुष यह पता करने निकल गए कि पड़ोस के गाँवों में से कोई लापता तो नहीं है , वहीं महिलाएँ डूबे हुए आदमी की देखभाल करने के लिए उसी मकान में रह गईं। उन्होंने घास के फाहों से उसकी देह पर लगी मिट्टी को साफ किया। पानी में डूबे रहने के कारण जो छोटे-छोटे कंकड़-पत्थर उसके बालों में उलझ गए थे , उन्होंने उनको भी हटाया। फिर उन्होंने मछलियों के शल्क हटाने वाले उपकरणों से उसकी त्वचा पर जमी परतों और पपड़ियों को खुरचा।

जिन शुरुआती बच्चों ने उस फूले हुए अँधेरे और चिकने उभार को समुद्र में से अपनी ओर आते हुए देखा, उन्होंने सोचा कि वह जरूर दुश्मन का जहाज होगा। फिर उन्होंने पाया कि उस पर कोई झंडा या पाल नहीं लगा था , इसलिए उन्हें लगा कि वह कोई व्हेल मछली होगी। लेकिन जब वह किनारे पर आ कर लगा और उन्होंने उस पर लगे समुद्री खर-पतवार के गुच्छे , जेलीफिश के जाल , मछलियों के अवशेष और पानी में तैरने वाले जहाज के टुकड़ों को हटाया तब जा कर उन्हें पता चला कि दरअसल वह एक डूबा हुआ आदमी था।

पूरी दोपहर बच्चे उससे खेलते रहे। कभी वे उसे तट की रेत में दबा देते , कभी बाहर निकाल लेते। पर संयोग से किसी बड़े आदमी ने उसे देख लिया और पूरे गाँव में यह चौंकाने वाली सूचना फैला दी। जो लोग उसे उठा कर करीब के घर में ले गए , उन्होंने यह पाया कि वह उनकी जानकारी में आए किसी भी अन्य मरे हुए आदमी से ज्यादा भारी था। वह लगभग किसी घोड़े जितना भारी था , और उन्होंने एक-दूसरे से कहा कि शायद वह काफी अरसे से तैर रहा था , इसलिए पानी उसकी हड्डियों में घुस गया था। जब उन्होंने उसे जमीन पर लेटाया तब उन्होंने कहा कि वह अन्य सभी लोगों से ज्यादा लम्बा था क्योंकि कमरे में उसके लिए मुश्किल से जगह बन पाई। पर उन्होंने सोचा कि शायद मृत्यु के बाद भी बढ़ते रहने की योग्यता कुछ डूब गए लोगों की

प्रवृत्ति का हिस्सा थी । उसमें समुद्र की गंध रच-बस गई थी और केवल उसका आकार ही यह बता पा रहा था कि वह किसी इंसान की लाश थी , क्योंकि उसकी त्वचा पर कीचड़ और पपड़ियों की परत जम गई थी ।

मृतक एक अजनबी था , यह बताने के लिए उन्हें उसके चेहरे को साफ करने की भी जरूरत नहीं पड़ी । गाँव में लकड़ी के केवल बीस मकान थे जिनमें पत्थरों के आँगन थे , जहाँ कोई फूल नहीं उगे थे । ये मकान मरुभूमि जैसे एक अंतरीप के अंत में बने हुए थे । वहाँ जमीन की इतनी कमी थी कि माँओं को हरदम डर लगा रहता कि तेज हवाएँ उनके बच्चों को समुद्र में उड़ा ले जाएँगी । इतने बरसों में थोड़े से मृतकों को निपटाने के लिए उन्हें खड़ी चटान से समुद्र में फेंक दिया जाता था । लेकिन समुद्र शांत और उदार था , और सभी लोग सात नावों में अँट जाते थे । इसलिए जब उन्हें डूबा हुआ आदमी मिला तो यह जानने के लिए कि वे सभी वहाँ मौजूद थे , उन्हें केवल एक-दूसरे को देखना भर था ।

उस रात वे सब काम पर समुद्र में नहीं गए । जहाँ पुरुष यह पता करने निकल गए कि पड़ोस के गाँवों में से कोई लापता तो नहीं है , वहीं महिलाएँ डूबे हुए आदमी की देखभाल करने के लिए उसी मकान में रह गईं । उन्होंने घास के फाहों से उसकी देह पर लगी मिट्टी को साफ किया । पानी में डूबे रहने के कारण जो छोटे-छोटे कंकड़-पत्थर उसके बालों में उलझ गए थे , उन्होंने उनको भी हटाया । फिर उन्होंने मछलियों के शल्क हटाने वाले उपकरणों से उसकी त्वचा पर जमी परतों और पपड़ियों को खुरचा । जब वे यह सब कर रही थीं तो उन्होंने पाया कि उसकी देह में लिपटी वनस्पतियाँ गहरे पानी और दूर-दराज के समुद्रों से आई थीं । उसके कपड़े चिथड़ों-जैसी हालत में थे । लगता था जैसे वह प्रवालों की भूल-भुलैया में से बहकर वहाँ पहुँचा था ।

उन्होंने इस बात पर भी ध्यान दिया कि मृत होते हुए भी वह बेहद गरिमामय लग रहा था । समुद्र में डूब गए अन्य लोगों की तरह वह एकाकी नहीं लग रहा था । नदियों में डूब गए लोगों की तरह वह मरियल और जरूरतमंद भी नहीं लग रहा था । लेकिन असल में वह किस कस्मि का आदमी था , यह बात उन्हें उसकी देह की पूरी सफाई करने के बाद ही पता चली , और तब यह देखकर वे विस्मित हो गईं । आज तक उन्होंने जितने लोग देखे थे , वह उन सभी से ज्यादा लम्बा , हट्टा-कट्ठा और ओजस्वी था । हालाँकि वे सब हैरानी से उसे निहार रही थीं , पर उसकी कद-काठी और उसके रूप की कल्पना कर पाना उनके लिए सम्भव नहीं था ।

उसे लेटाने के लिए उन्हें पूरे गाँव में उतना लम्बा बिस्तर नहीं मिला , न ही उन्हें कोई ऐसी मजबूत मेज ही मिली जो अंत्येष्टि से पहले की रात उसके जागरण संस्कार के समय उसे लेटाने के काम आती । गाँव के सबसे लम्बे लोगों की पतलूनें उसे छोटी पड़ गईं , सबसे मोटे लोगों की कमीजें उसे नहीं आईं , और सबसे बड़े पैरों के जूते भी उसके पैरों की नाप से छोटे निकले । उसके विशाल आकार और रूप से मोहित हो कर गाँव की महिलाओं ने एक नाव की पाल से

उसकी पतलून , और किसी दुल्हन के शानदार कपड़ों से उसकी कमीज बनाने का निश्चय किया ताकि वह मृत्यु के बाद भी गरिमामय बना रहे । जब वे एक गोल घेरे में बैठकर बीच-बीच में लाश को देखते हुए कपड़े सिल रही थीं , तब उन्हें लगा जैसे इस रात से पहले हवा कभी स्थिर नहीं थी , न ही समुद्र कभी इतना अशांत था , और उन्होंने मान लिया कि इन परिवर्तनों का मृतक से कुछ-न-कुछ लेना-देना था ।

उन्होंने सोचा कि यदि यह प्रतापी व्यक्ति उनके गाँव में रहा होता तो उसके भव्य मकान के दरवाजे सबसे चौड़े होते , छत सबसे ऊँची होती, फर्श सबसे मजबूत होती , पलंग को किसी जहाज के ढाँचे के बीच के हिस्से में लोहे की कीलें ठोककर बनाया गया होता , और उसकी पत्नी सबसे प्रसन्न स्त्री होती । उन्होंने सोचा कि उस आदमी का रुतबा ऐसा होता कि वह महज उनके नाम लेकर ही समुद्र के अंदर की मछलियों को पानी से बाहर बुला लेता । उस आदमी ने अपनी जमीन पर इतनी ज़्यादा मेहनत की होती कि पत्थरों के बीच से फूट कर फव्वारे निकल आते , जिससे वह खड़ी चटानों पर फूलों के पौधे उगा सकता । उन्होंने चुपके-से अपने मर्दों की तुलना उस आदमी से की , और इस नतीजे पर पहुँचीं कि जो काम वह आदमी एक ही रात में कर देता , उस काम को उनके मर्द जीवन भर मेहनत करके भी न कर पाते । मन-ही-मन उन्होंने अपने मर्दों को पृथ्वी पर मौजूद सबसे कमजोर , सबसे निकृष्ट और सबसे बेकार जीव मान कर खारिज कर दिया । वे सभी महिलाएँ अपनी अनोखी कल्पनाओं की भूलभुलैया में विचर रही थीं , जब उनमें से सबसे बड़ी उम्र की महिला ने एक लम्बी साँस ली । सबसे बड़ी उम्र की महिला होने के कारण उसने डूबे हुए आदमी को कामवासना से देखने की बजाए दयालु दृष्टि से देखा था । वह बोली -- 'इसका चेहरा तो एस्टेबैन नाम के आदमी से मिलता-जुलता है ।'

यह सच था । उनमें से अधिकांश महिलाओं के लिए उसके चेहरे को केवल एक बार और देखने भर की जरूरत थी । वे यह जान गई थीं कि उसका और कोई नाम हो ही नहीं सकता था । उनमें से कम-उम्र और ज़्यादा हठी महिलाएँ फिर भी कुछ घंटों तक भ्रम की स्थिति में बनी रहीं । उन्हें लगा कि यदि वे उसे पूरे कपड़े और चमड़े के बढ़िया जूते पहना कर फूलों के बीच लेटा दें तो शायद वह लौटैरो नाम से जाना जाए । पर यह एक अहंकारी भ्रम था । महिलाओं के पास ज़्यादा कपड़ा नहीं था । कपड़ों की कटाई और सिलाई अच्छी तरह नहीं हुई थी , जिसके कारण वह पैंट उस आदमी को बहुत छोटी पड़ रही थी । उसके सीने में मौजूद छिपी ताकत की वजह से उसकी कमीज के बटन खिंच कर बार-बार खुल जाते थे ।

मध्य-रात्रि के बाद हवा का वेग कम हो गया , और समुद्र फिर से अपनी बुधवार वाली निद्रालु अवस्था में चला गया । उस नीरव सन्नाटे ने सारी शंकाएँ दूर कर दीं -- वह एस्टेबैन ही था । महिलाओं ने उसे कपड़े पहनाए थे , उसके बाल सँवारे थे , उसके नाखूनों को काटा था और उसकी दाढ़ी बनाई थी । जब उन्हीं महिलाओं को यह पता चला कि अब उस आदमी को जमीन पर घसीट कर ले जाया जाएगा , तो करुणा और खेद से उनके रोंगटे खड़े हो गए । और तब जा कर

वे सब यह समझ पाईं कि जो विशाल आकार उसे मृत्यु के बाद भी दुख दे रहा था , जीवन में उसने उसे कितना दुखी किया होगा ।

अब वे उसके जीवन की कल्पना कर सकती थीं -- अपने विशाल आकार के कारण वह दरवाजों के बीच में से झुककर निकलने के लिए अभिशप्त रहा होगा , उसका सिर बार-बार छत की आड़ी शहतीरों से टकरा कर फूट जाता होगा । किसी के यहाँ जाने पर उसे देर तक खड़े रहना पड़ता होगा । सील मछली जैसे उसके मुलायम गुलाबी हाथ यह नहीं जानते होंगे कि उन्हें क्या करना है । उधर गृह-स्वामिनी खुद डरी होने के बावजूद अपनी सबसे मजबूत कुर्सी आगे करते हुए उससे बैठने का आग्रह करती होगी -- 'बैठिए न , एस्टेबैन जी !' लेकिन वह मुस्कराते हुए दीवार के सहारे खड़ा रहता होगा -- 'आप तकलीफ़ न करें , भाभीजी । मैं यहाँ ठीक हूँ ।' हालाँकि उसकी एड़ियाँ दुख रही होतीं और जब भी वह किसी के यहाँ जाता , तब बार-बार यही क्रम दोहराने के कारण उसकी पीठ में भी दर्द होता -- 'आप तकलीफ़ न करें । मैं यहाँ ठीक हूँ ।' पर वह ऐसा केवल कुर्सी के टूटने की शर्मिंदगी से बचने के लिए कहता । और शायद वह कभी नहीं जान पाता था कि वही लोग जो उससे कहते थे -- 'नहीं जाओ , एस्टेबैन , कम-से-कम काफ़ी के बनने तक तो रुक जाओ' , वही लोग बाद में फुसफुसा कर एक-दूसरे से कहते थे -- 'शुक्र है , वह बड़ा-सा बुद्धू आदमी चला गया । वह रूपवान बेवकूफ चला गया !'

उस रूपवान आदमी के शव के बगल में बैठी महिलाएँ सुबह होने से थोड़ा पहले यही सब सोच रही थीं । बाद में उन्होंने उसके चेहरे को एक रुमाल से ढँक दिया ताकि रोशनी से उसे कोई तकलीफ न हो । इस समय वह इतना अरक्षित , सदा से मृत और उन महिलाओं के अपने मर्दों जैसा लग रहा था कि वे सभी यह देखकर रोने लगीं । वह एक कम उम्र की स्त्री थी जिसने रोने की शुरुआत की । फिर दूसरी महिलाएँ भी रुदन में शामिल हो गईं । वे लम्बी साँसें भर रही थीं और विलाप कर रही थीं । वे जितना ज़्यादा सुबकतीं , उतनी ही ज़्यादा उनकी रोने की इच्छा बलवती होती जाती । दरअसल वह डूबा हुआ आदमी अब पूरी तरह से एस्टेबैन लगने लगा था । इसलिए वे बहुत ज़्यादा रोती रहीं क्योंकि वह पूरी पृथ्वी पर सर्वाधिक दीन-हीन , सर्वाधिक शांत और सर्वाधिक कृपालु आदमी लग रहा था , बेचारा एस्टेबैन । इसलिए जब गाँव के मर्द इस खबर के साथ लौटे कि वह डूबा हुआ आदमी पड़ोस के किसी गाँव का निवासी नहीं था , तो आँसुओं के बीच महिलाओं के मन में उल्लास की रेखा खिंच गई । 'शुक्र है परमात्मा का , 'वे सब लम्बी साँसें ले कर बोलीं,' यह डूबा हुआ।

✧ ✧ ✧

परम्परागत संचार माध्यमों की चुनौतियाँ

प्रो. (डॉ.) रामस्वरूप भगत

समाचार पत्रों के संपादक पर टिप्पणी करते हुए कालाईल ने 1840 में लिखा है-मुद्रण का कार्य अनिवार्यतः लेखन के बाद होता है। अतः मैं कहता हूँ लेखन और मुद्रण लोकतंत्र के स्तम्भ हैं।

अस्तु यह स्पष्ट है कि लोकसम्पर्क की भूमिका में वर्त्तमान समय में समाचार पत्रों, संवाद समितियों, रेडियों, टेलीविजन फिल्म तथा इसी प्रकार के साधनों का विशेष महत्व है।

संचार माध्यम में संचार शब्द की उत्पत्ति ''चर'' धातु से हुयी है-जिसका अर्थ है- चलना।

लोक सम्पर्क का अर्थ बड़ा व्यापक और प्रभावकारी है। लोकतंत्र के आधार पर स्थापित लोकसत्ता के परिचालन के लिए ही नहीं बल्कि राजतंत्र और अधिव्यापकतंत्र के संचालन के लिए भी लोक सम्पर्क आवश्यक माना जाता है। कृषि, उद्योग, व्यापार, जनसेवा और लोकरूचि के विस्तार तथा परिष्कार के लिए भी लोक सम्पर्क की आवश्यकता है। लोक सम्पर्क का शब्दिक अर्थ है। 'जनसाधारण' से अधिकाधिक निकट संबंध।

प्राचीन काल में राजतांत्रिक व्यवस्था में लोकरूचि को जानने समझने के लिए गुप्तचर व्यवस्था का सहारा लिया जाता था, परन्तु आज के बढ़ते वैज्ञानिक दौर में यह उपयोग नहीं रह गया है। उस समय-अपने निर्देशों और मंतव्यों को शिलालेख ताम्रपत्रों तथा प्रस्तर मूर्तियों पर अंकित शब्द-चित्र के माध्यम से जन संचार प्रसारित कराये जाते थे। धर्मग्रंथों और उपदेशों के द्वारा जनरूचि के द्वारा जनरूचि का परिष्कार कराया जाता था। आज भी विक्रमादित्य और हर्षवर्द्धन आदि राजाओं के समय के जो शिलालेख मिलते हैं, उससे पता चलता है कि प्राचीन काल में लोक सम्पर्क का मार्ग कितना जटिल और दुरूह था। जैसे-जैसे आधुनिक विज्ञान का विकास हुआ और साधन बढ़े जन संचार का मार्ग प्रशस्त

होता चला गया। अब ऐसा समय आ गया है कि जब लोक सम्पर्क के लिए मुद्रितग्रंथ, प्रसारण यंत्र (रेडिया-टेलीविजन) लघु पुस्तक-पत्रिकाएँ, चलचित्र, ध्वनि विस्तारक यंत्र आदि अनेक साधन उपलब्ध हैं। इन्हीं साधनों का व्यापक उपयोग राज्य सत्ता, औद्योगिक व्यापार-संगठन एवं अन्तर्राष्ट्रीय संगठन के द्वारा प्रयोग में लाये जा रहे है।

आधुनिक युग में लोक सम्पर्क के सर्वोतम माध्यम का कार्य समाचार-पत्र कर रहे हैं, इसके बाद रेडियो, टेलीविजन और इंटरनेट आदि से लोक सम्पर्क-कार्य निष्पादित हो रहे है।

लोक सम्पर्क का महत्व प्राचीनकाल से लेकर आधुनिक समय तक दिनोंदिन बढता चला जा रहा है। लोक सम्पर्क की महत्ता को अमेरिकी राष्ट्रपति टामसजेफर्सन ने 1787 ई0 में लिखा था हमारी सत्ताओं का आधार लोकमत है। अत: हमारा प्रथम उद्वेश्य होना चाहिए लोकमत को ठीक रखना। उन्होंने ने यह इच्छा जतलायी थी कि हर व्यक्ति तक सरकार की नीतियों और कार्य प्रणाली की जानकारी समाचार-पत्रों द्वारा लोगों तक पहुँचाई जाएँ। जहाँ समाचार स्वतंत्र है और हर व्यक्ति पढ़ने की योग्यता रखता है वहाँ सब कुछ सुरिक्षत है।

मैकाले ने सन् 1828 में लिखा-संसद की जिस दीर्घा में समाचार पत्रों के प्रतिनिधि बैठते हैं, वहीं सत्ता का चतुर्थ वर्ग है। इसके बाद एडमंडबर्क ने लिखा-संसद में सत्ता के तीन वर्ग हैं किन्तु पत्र-प्रतिनिधियों का कक्ष चतुर्थ है जो सबसे अधिक महत्वपूर्ण है।

समाचार पत्रों के संपादक पर टिप्पणी करते हुए कालाईल ने 1840 में लिखा है-मुद्रण का कार्य अनिवार्यत: लेखन के बाद होता है। अत: मैं कहता हूँ लेखन और मुद्रण लोकतंत्र के स्तम्भ हैं।

अस्तु यह स्पष्ट हैं कि लोकसम्पर्क की भूमिका में वर्त्तमान समय में समाचार पत्रों, संवाद समितियों, रेडियो, टेलीविजन फिल्म तथा इसी प्रकार के साधनों का विशेष महत्व है।

अभिव्यक्ति और माध्यम:-

सूचनाओं, विचारों और भावनाओं का लिखित या मौखिक या दृश्य श्रव्य माध्यमों के जरिए सफलतापूर्वक आदान-प्रदान करना या एक जगह से दूसरी जगह पहुँचना संचार है। इस प्रक्रिया को सम्पन्न करने में सहयोगी तरीके तथा उपकरण संचार के माध्यम कहलाते हैं

सृष्टि के प्रारंभ से जब से मानव की उत्पत्ति हुई तब से अपनी इच्छाओं, संवेगों, भावनाओं एवं आवश्यकताओं को मूर्त रूप प्रदान करने हेतु जिस हाव-भाव का प्रयोग किया जाता रहा है। कालांतर में वह भाषा के रूप में विकसित हुई। भाषा ने ही मानव के सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन को संभव बनाया है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, उसके लिए बिना किसी संचार के जीवित रहना असंभव है। हर मानव परिवार, समाज एवं समूह में अपना जीवन व्यतीत करता है। इसमें स्थिति और आवश्यकता के अनुसार परस्पर संचार के कार्य होते रहे हैं। जिस प्रकार हमारी आवश्यकता असीमित है, उसी प्रकार संचार के उद्वेश्य भी असीमित हैं। मानव अपने प्रारंम्भिक काल से ही अपने विचारों को अन्य क्षेत्र और स्तर तक पहुँचाने के लिए प्रयासरत रहा है। विचारों,

सूचनाओं और भावनाओं की निरन्तर अभिव्यक्ति से ही हमारे समग्र जीवन मूल्यों और संस्कृति की संरचना होती आयी है। आज हर मनुष्य में सूचना की भूख है। वह संचार माध्यमों द्वारा जन-संचार के असीमित संदेश दूसरों तक पहुँचा भी रहा है।

21 वीं सदी में जन माध्यमो का क्षितिज अपने देश एवं अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्रों में बहुत बढ़ गया है। समाज का हर वर्ग बच्चे महिला, नवयुवक एवं वृद्ध जनमाध्यमों से जुड़ गए है। पहले कभी भी इतनी सूचना इतनी आसानी से इतने क्षेत्रों में, इतने कम समय में इतने लोगों तक उपलब्ध नहीं हो पाती थी। जन माध्यमों के द्वारा सूचना की पहुँच प्रभाव, दायरा और विविधता में अदभुत वृद्धि हुई है। आधुनिक जन संचार माध्यमों के पूर्व हमारे समाज में परम्परागत संचार माध्यम जैसे-लोकनृत्य, लोककथाओं, लोकगीत आदि का लम्बे समय तक प्रयोग होता रहा है। तेजी से बदलते परिवेश के बावजूद भी परम्परागत लोक माध्यमों की पहचान अभी भी कायम है। इसका उदाहरण

पराम्परागत माध्यमों के द्वारा मूल्यों आदि विचारों का हस्ताकरण एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक हुआ है। आधुनिक माध्यम के विकास के बावजुद भी हमारी लोक संस्कृति में रचे-बसे परम्परागत माध्यमों के प्रभाव कुछ कम नहीं हुए हैं। अस्तु यह कहना समीचीन लगता है कि आधुनिक जन माध्यमों ने परम्परागत माध्यमों को स्थायीत्व देने में भी योगदान किया है। परम्परागत संचार माध्यम भारत में संचार व्यवस्था के मूल में है। लोक भावनाओं की सर्वाधिक सशक्त अभिव्यक्ति यदि कहीं संभव है तो वह परम्परागत संचार विभिन्न माध्यमों के द्वारा ही है।

आज भी समाज में विशेषकर गॉव में जागरूकता लाने के लिए इस का प्रयोग हो रहा है।

पिछले कई वर्षो से जन संचार की गति में तीव्रता आयी है। अर्थात जनसंचार का तेजी से विकास हुआ है। अखवार, टीवी. रेडियों के पाठक और दर्शक और श्रोताओं की संख्या में काफी वृद्धि हुयी है। ऐसी स्थिति में जनसंचार माध्यम की जिम्मेवारी और बढ़ जाती है। जन माध्यम लोगों के मनोरंजन करने के साथ ही गॉवों की मूलभूत समस्याओं, आवश्यकताओं को उजागर कर ग्रामीण उत्थान तथा ग्रामवासियों के जीवन स्तर को उठाने में प्रमुख योगदान दे रहा है।

काश्मीर से कन्याकुमारी तक फैले भू-भाग पर विकास कर रहा मानव समाज भारतीय लोक है। लोक राष्ट्र की अमूल्य निधि है। हमारे देश के अंतर्गत कृषक, अर्थशास्त्र, ज्ञान साहित्य , कला नृत्य, संगीत, तथा वार्ताएँ सब कुछ भारतीय लोक से जुड़ी हुई है।

पराम्परागत माध्यमों के द्वारा मूल्यों और विचारों का हस्तांतरण एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक हुआ है। आधुनिक माध्यम के विकास के बावजूद भी हमारी लोक संस्कृति में रचे-बसे

परम्परागत माध्यमों के प्रभाव कुछ कम नहीं हुए हैं। अस्तु यह कहना समीचीन लगता है कि आधुनिक जन माध्यमों ने परम्परागत माध्यमों को स्थायीत्व देने में भी योगदान दिया है। परम्परागत संचार माध्यम भारत में संचार व्यवस्था के मूल में है। लोक भावनाओं की सर्वाधिक सशक्त अभिव्यक्ति यदि कहीं संभव है तो वह परम्परागत संचार के विभिन्न माध्यमों के द्वारा ही है। लोकगीत-जैसे बिरहा चैती, निर्गुण आदि। लोकनृत्य जैसे भांगड़ा भरतनाट्य, गरबा आदि लोकवाद्य-शहनाई सितार तबला, लोककलाएँ जैसे- चित्रकारी, कसीदाकारी आदि लोक नाट्य जैसे-रासलीला, रामलीला आदि सभी परम्परागत संचार के माध्यम है। परम्परागत जन-संचार माध्यम ग्रामीणों के निकट होने के कारण लोक संचार माध्यम भी कहे जाते है। इनकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि कोई साहित्य या व्याकरण न होने के बाद भी इनका विकास मौखिक या क्रियागत स्त्रोतों के माध्यम से होता रहता है। आधुनिक माध्यम के बहुमुखी विकास के बावजूद भी हमारी लोकसंस्कृति में रचे-बसे परम्परागत माध्यमों के प्रभाव में कमी नहीं आयी है।

निष्कर्षत: यह कहना अत्यधिक प्रासंगिक लगता है कि आधुनिक जनसंचार के तेजी से विकास के क्रम में परम्परागत माध्यम अपनी पूर्ण साज-सज्जा के रूप के उपस्थिति दर्ज कर लोक जीवन के मूल्य को रेखांकित कर रही है। भाव-अनुभाव के साथ-साथ बदलते विचार बोध से जन-जीवन को प्रभावित करती हुई दिखलाई पड़ रही है। मानवीय स्वभाव और व्यवहार में परम्परागत माध्यम की रचना मिश्रित है जो हर पल अपने प्रभालोक से देश समाज को जोड़ने तथा विकसित करने में योगदान दे रहा है।

सदंर्भ-

1. डॉ0 गोपाल चन्द्र मधुकर- भारतीय चित्रकला ऐतिहासिक, संदर्भ साहित्य संगम इलाहाबाद, 2. उमंग प्रकाश सिंह-संचार के मूल सिद्धांत क्लासिकल पब्लिकेशन-2002, 3. एन.पी. चत्तुर्वेदी- जनसंचार एवं पत्रकारिता, पोइन्टर पब्लिशर्स जयपुर, 2005, 4. संजीव सिंह सेंगर- भारत के सांस्कृतिक लोकनृत्य ममता प्रकाशन दिल्ली-2007, 5. डॉ0 महेन्द्र मानावत-भारतीय लोक माध्यम राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी जयपुर-2003, 6. महावीर अग्रवाल-लोकसंस्कृति आयाम एवं परिप्रेक्ष्य शेकर प्रकाश। दुर्ग- 1987, 7. डॉ0 अर्जुन तिवारी-जनसंचार-उपकार प्रकाशन आगरा, 8. www. Wikipedia] 9. www. (प्रात:काल) Pratahkal.com

प्रो0 डॉ0 रामस्वरूप भगत, एसोसिएट प्रोपफेसर, हिन्दी विभाग, श्री गुरूगोविन्द सिंह महाविद्यालय, पटना सिटी

भविष्य के हिन्दुस्तान का राजनैतिक आख्यान रचती कहानियाँ

प्रकाश चन्द्र

(इस आलेख में भीष्म साहनी की कथा विशेषताओं को रेखांकित करते हुए उनके 2016 में प्रकाशित असंकलित कहानियों के संग्रह 'चीलें' को केंद्र में रखकर, उसमें संकलित दो कहानियों (आजादी का शताब्दी समारोह ''और'' रिपोर्टर की डायरी) का विश्लेषण किया गया है । भीष्म साहनी की इन कहानियों की चर्चा अभी तक बहुत कम हुई है ।

भीष्म साहनी को पढ़ना जितना सरल है उन पर लिखना उतना ही कठिन । भीष्म साहनी पर लिखते हुए हमेशा यह दुविधा रहती है कि उनके किस रूप को पकड़ा जाए । बतौर लेखक, एक्टिविस्ट और अभिनेता । यह बात सभी जानते हैं कि हिंदी में प्रेमचंद के बाद की कथा पीढ़ियों में खासतौर पर 'नई कहानी' पीढ़ी के महत्वपूर्ण कथाकारों में होते हुए भी, भीष्म साहनी सिर्फ कथाकार नहीं थे । वह अपनी पीढ़ी के उतने ही महत्वपूर्ण नाटककार भी थे । भीष्म साहनी र्सिफ कहानी, उपन्यास और नाटक लेखन तक ही सीमित नहीं थे बल्कि वर्षों तक इप्टा से जुड़े रहे और कई नाटकों का निर्देशन और स्वयं अभिनय भी किया । इसके साथ ही टीवी धाारावाहिकों और फिल्मों में भी काम किया । 'बहादुरशाह ज़्ार ', 'राजधानी' जैसे धारावाहिकों के साथ-साथ 'मोहन जोशी हाजिर हो', 'लिटिल बुद्धा', 'तमस' और 'मिस्टर एंड मिसेज अय्यर' जैसी फिल्मों में भी अभिनय किया । इन सब भूमिकाओं के बाद भी भीष्म साहनी अपनी धुन में मगन रचनाकार नहीं थे । सामाजिक मोर्चे से लेकर राजनैतिक मोर्चे तक पर भीष्म साहनी हमेशा अडिग रहे । इन सब भूमिकाओं में होते हुए भी भीष्म साहनी के पास धुंधले और उजले यथार्थ को पकड़ने की महत्वपूर्ण कला थी । इस कला का नमूना ही उनकी कहानियाँ है । इसलिए वह एक तरह से अपनी जनता के आवयविक (ऑर्गेनिक) बुद्धिजीवी थे ।

कहानी कहनी

कई दुविधाओं के बावजूद यहाँ कहानीकार भीष्म साहनी पर बात करने की कोशिश कर रहा हूँ। भीष्म साहनी अपनी कहानियों में शहरी और कस्बाई मध्यवर्गीय जीवन में ज्यादा सहूलियत महसूस करते हैं। उनकी कथा और पात्र जीवन के जटिल याथार्थ से जुड़े होते हैं, जिसमें कुछ भी ऐसा नहीं होता जिसका कोई अर्थ न हो। यहाँ तक भीष्म साहनी की कहानियों में कहीं-कहीं शब्द और पात्रों से ज्यादा परिवेश महत्वपूर्ण होता है। इसलिए मुझे कई बार भीष्म साहनी सिनेमेटिक कहानीकार लगते हैं। सिनेमा की तरह उनकी कहानियों में शब्दों से ज्यादा परिवेश बोलता है। लगता है कि कैमरे की आँख से वह परिवेश को देख रहे हैं। इस परिवेश का दायरा हिंदुस्तान का फैलता मध्यवर्ग है। यह मध्यवर्ग ही भीष्म साहनी की कहानियों की धुरी है और सांप्रदायिकता की समस्या उनकी चिर स्थाई चेतना का स्वरूप। अपनी अधिकांश कहानियों में मध्यवर्ग के खोखलेपन, पाखंड और स्वार्थपरता को व्यंग्य और विडंबना के माध्यम से चित्रित किया है। इसके साथ ही निम्न कहे जाने वाले वर्ग के पात्रों के जरिए तनाव और द्वंद्व की सृष्टि करके वे दोनों वर्गों के चारित्रिक छद्‌म का पर्दाफाश भी करते हैं। भीष्म साहनी की कहानियों की एक विशेषता यह है कि उनकी कहानियों में सामाजिक यथार्थ इकहरे रूप में नहीं, बल्कि अपने संश्लिष्ट रूप में, अपनी सारी विडंबनाओं के साथ आता है। अपने इस संश्लिष्ट और गहरे यथार्थबोध को वो जिस बारीकी से चित्रित करते हैं, वह कहीं संस्मरण के रूप में 'वङ्चू' या 'गलमुच्छे' जैसी कहानियों में दिखाई देता है तो वहीं 'ओ हरामजादे' जैसी कहानियों में वह यथार्थ यात्रा- वृत्तांत के रूप में नजर आता है। मध्यवर्ग के चारित्रिक सोपानों पर हिंदी कथा साहित्य में बहुत लेखन हुआ है। लेकिन भीष्म साहनी का लेखन उन 'अन्य' से कई मायनों में अलहदा है। एक तो भीष्म के यहाँ कहानी कोई चमत्कार या खुलासा जैसा कुछ नहीं करती, वह आपको किसी भी स्थल पर चौंकाती नहीं है। दूसरा आप एक धुन में भीष्म साहनी को पढ़ते जाइए वह होमियोपेथिक की गोलियों की तरह धीरे-धीरे आप पर असर करेगी। इसलिए भीष्म साहनी की कहानियों में एक ठहराव भी है और सरलता भी है। मध्यवर्ग के अतिरिक्त भीष्म साहनी ने सांप्रदायिकता पर जमकर लिखा और निरंतर यह महसूस करते रहे कि सांप्रदायिकता जैसे मानव विरोधी खतरे से हमें लड़ने की आवश्यकता है। इसलिए भारत विभाजन से लेकर गुजरात के नरसंहार तक पर कलम चलाई।

भीष्म साहनी को पढ़ते हुए लगा की साहित्य में श्रेष्ठ जैसा कुछ है तो भीष्म साहनी का श्रेष्ठ उनकी कहानियों में है। एक जगह राजेन्द्र यादव ने भी लिखा है कि भीष्म अपने सर्वश्रेष्ठ रूप में या तो कहानियों में है या नाटकों में। उसके आगे राजेंद्र यादव ने लिखा है कि 'भीष्म उन दृष्टि संपन्न कथाकारों में है जहाँ निजी अनुभूतियाँ सामाजिक सरोकारों में बदल जाती हैं। ये सामाजिक सरोकार ही उसे हमारे समय का महत्वपूर्ण लेखक बनाते हैं, रचना की समाज निरपेक्ष कलात्मकता नहीं। भीष्म के लिए लेखन एक 'अनुष्ठान' द्धएक्ट अक्र ेथ्रः की तरह है। मुझे

लगता है कि भीष्म पैशन का नहीं, कंपैशन का लेखक है । न वह आवेग उद्वेग का लेखक है, न व्यक्ति के निजी अंतर्द्वंद्वों का' । भीष्म साहनी में बहुत ही सीधे तौर पर कहानी कहने की कला है । बड़ी ही सहजता से वह अपने समय में होते भी बहुत कुछ हमारे समय का लिख डालते हैं । कहानी यदि जीवन के टुकड़े या खंड में निहित होती है तो भीष्म साहनी सच्चे अर्थों में उसके लेखक हैं । भीष्म साहनी की कहानियों में कमाल की किस्सागोई है । वह जीवन के किसी एक टुकड़े को पकड़ते हैं और किस्सों का पूरा वितान रच डालते हैं । अमरकांत ने एक जगह लिखा है 'इस समय हिंदी में भीष्म साहनी जी से अच्छा स्टोरी टेलर कोई नहीं है । वह कहानी लिखते नहीं, बल्कि कहानी या कहनी कहते हैं । कहानी कहने की ऐसी कुशलता आप शरद चंद्र में देख सकते हैं । भीष्म जी कहीं से भी कोई बात उठा लेते हैं और उसे बहुत ही आसानी से कहानी का रूप दे देते हैं । कभी-कभी भीष्म जी की कहानियों को पढ़कर बुनाई , कढ़ाई, गृहशिल्प आदि में निपुण महिला का चित्र मेरे सामने उपस्थित हो जाता है जो मामूली ऊन और धाागों से बहुत जल्दी सुंदर डिजाइन बना लेती है' ।

नई कहानी और भीष्म साहनी

भीष्म साहनी नई कहानी के लेखक थे या उसके बरक्स चलने वाली धारा के लेखक? नई कहानी में जिस नएपन का आग्रह था क्या वह नयापन भीष्म साहनी की कहानियों में है? जिस बदले समाज, संबंधों की बात नई कहानी की तिकड़ी कर रही थी क्या वह भीष्म साहनी की कहानियों में नजर आती है? एक खास समय में लिखने से कोई उस समय की मुख्य प्रवृतियों का लेखक होता है ? आदि प्रश्नों का विश्लेषण करने से पहले, भीष्म साहनी नई कहानी के खाँचे में फिट होते हैं या नहीं इसके बारे में कुछ वक्तव्यों को देखना जरूरी है । इस तिकड़ी में से एक राजेंद्र यादव का मानना है कि 'भीष्म नई कहानी का लेखक इसलिए है कि उसकी प्राय: सभी रचनाएँ स्वतन्त्रता के बाद आने वाले मध्यवर्ग के भीतरी और बाहरी बदलाव को लेकर हैं । मगर वह नई कहानी से बाहर इसलिए है कि स्त्री उस तरह की रचनाओं के केंद्र में नहीं है जिस तरह मेरी, मोहन राकेश, कमलेश्वर निर्मल वर्मा कृष्ण बलदेव वैद, शैलेश मटियानी, रेणु, उषा प्रियंवदा, मन्नू भण्डारी और कृष्णा सोबती में है' । कोई कहानीकार नई कहानी से बाहर इसलिए है कि उसकी कहानियों में स्त्री 'उस तरह' नहीं है 'जिस तरह' उसके अन्य लेखकों की कहानियों में है। यह एक विचित्र कसौटी है । यहाँ न कथ्य के नएपन की चर्चा है न शिल्प के नएपन की , सिर्फ कसौटी है तो स्त्री चित्रण । क्या भीष्म साहनी को इसलिए नई कहानी से बाहर का लेखक मान लेना चाहिए क्योंकि उनकी कहानियों में स्त्री उस रूप में नहीं है जिस रूप में राजेंद्र यादव, मोहन राकेश और कमलेश्वर की कहानियों में है? इस प्रश्न पर अलग से विचार और बहस की पूरी गुंजाइश है । अभी इस प्रश्न को स्थगित रखते हुए कुछ और विद्वानों के विचारों को जानना आवश्यक है । नामवर सिंह, राजेंद्र यादव और अन्य नई कहानी के समर्थकों से ठीक विपरीत विजय मोहन सिंह एक स्थापना देते हुए कहते हैं 'हिंदी में यदि सचमुच कोई 'नयी कहानी' थी तो उसकी शुरुआत

भीष्म साहनी की कहानी 'चीफ की दावत' से मानी जानी चाहिए । 'चीफ की दावत' में पहली बार यह विडंबना उजागर होती है कि नौकरशाही किस तरह से मानवीय संबंधों का अवमूल्यन करती है । वहाँ मनुष्यों और वस्तुओं में कोई फर्क नहीं रह जाता है' । विजय मोहन सिंह को 'नई कहानी' का निर्मम आलोचक माना जाता है । मानवीय संबन्धों का अवमूल्यन नई कहानी की बड़ी विशेषता है और 'चीफ की दावत' कहानी में यह अपने चरम पर है । लेकिन फिर क्या इसी आधार पर उन्हें 'नई कहानी' का लेखक मान लेना चाहिए ? तो क्या फिर नामवर सिंह द्वारा 'परिंदे' कहानी के संदर्भ में 'नई कहानी' संबंधी स्थापनाओं और 'चीफ की दावत' कहानी को लेकर विजय मोहन सिंह की 'नई कहानी' संबंधी स्थापनाओं के आधार पर, इन कहानियों के पुनर्पाठ की आवश्यकता नहीं है ? इन प्रश्नों पर अब नए सिरे विमर्श की आवश्यकता है ।

भीष्म साहनी को आलोचकों ने कभी 'नई कहानी' का कहानीकार नहीं माना न ही कभी गंभीरता से इस पर विचार किया । जबकि उनकी कहानियों में कथ्य से लेकर शिल्प की नवीनता सभी ने स्वीकारी है । बकौल नामवर सिंह 'भीष्म जी की कहानियों में उनकी अपनी 'सिग्नेचर टड्न' है । उनकी कहानियाँ एक सधे हुए कलाकार की कहानियाँ है' । इस बात में कोई दो मत नहीं कि भीष्म साहनी की कहानियों का अपना एक 'स्टाइल' है । उसे आप किस खाँचे में रखें ये आपका मसला है ।

भारत दुर्दशा देखि न जाई..

भीष्म साहनी की अभी तक असंकलित कहानियों का संग्रह 'चीलें' नाम से हाल ही में प्रकाशित हुआ है । इस संग्रह में कुल 12 कहानियाँ हैं लेकिन उसमें से दो कहानियाँ 'आजादी का शताब्दी समारोह' और 'रिपोर्टर की डायरी' ऐसी कहानियाँ है जो भीष्म साहनी के तेवर से भिन्न मिजाज की हैं । 'आजादी का शताब्दी समारोह' कहानी वर्तमान की आँख से भविष्य की त्रासदी को दिखाती है । कहानी जो कह रही है वह हम धाीरे-धाीरे फलीभूत होते देख रहे हैं । कहानी अपने समय का अतिक्रमण कर हमें 2047 के भारत में ले जाती है । कहानी 2047 के भारत की राजनैतिक, सांस्कृतिक, सामाजिक और आर्थिक स्थितियों को व्यंग्यात्मक लहजे में बयान करती है । बतौर लेखक भीष्म साहनी भी जितने अपने समय के लेखक थे उससे कहीं ज्यादा वह हमारे समय के लेखक हैं। इसलिए भी कि एक समय में रहना या एक समय में लिखना कभी भी एक समय को लिखना नहीं होता है । एक समय में होते हुए भी हम अलग-अलग समय में होते हैं । भीष्म साहनी तो कई बार अपने समय से आगे भी लिख रहे थे जिसमें सामाजिक और राजनैतिक स्थितियों का चित्रण कई स्तरों पर दिखाई देता है । उनके कहानियों के पूरे केनवास को देखें तो मध्यवर्ग उनकी कहानियों का आधार है । भीष्म साहनी का मध्यवर्ग वह है जिसे आप सरकारी भाषा में 'बाबू' वर्ग भी कहते हैं, जो अपनी आकांक्षाओं में हमेशा उच्च वर्ग को रखता है लेकिन अपने मध्यवर्गीय संस्कारों को तिरोहित किए बिना । भीष्म साहनी ने इस वर्ग की दुर्बलताओं से लेकर आशाओं, आकांक्षाओं को कहानियों में पिरोया है । इस संग्रह में भी 'सफाई अभियान' जैसी

कहानी मध्यवर्गीय के दिखावे को उजागर करती है जो हमें 'स्वच्छ भारत' अभियान जैसे कार्यक्रम की शुरुआती छवियों में देखने को मिलती है , जिसमें समर्पण और गंभीरता से ज्यादा दिखावा नजर आता है। भीष्म साहनी मध्यवर्ग के सफेदपोश दिखावे, जिसे आप 'शो ऑफ' भी कह सकते हैं को श्रीमती गोयल के शब्दों में बयान करते हैं- 'श्रीमती गोयल कह रही थीं, मैं तो सारा प्रबंध कर चुकी हूँ । रविवार, प्रात: आठ बजे, हम लोग डाकखाने के सामने इकट्ठा होंगे । कार्यालय का चपरासी झाड़ू, टोकरियाँ, तसले आदि सारा सामान लेकर शनिवार की रात ही बस्ती पहुँचा देगा । चौकीदार रामदास उस रात बस्ती में ही रहेगा । रोहित स्टूडियो का फोटोग्राफर ठीक साढ़े आठ बजे बस्ती में मौजूद होगा । प्रेस वालों को भी चिठ्ठियाँ जा चुकी हैं' । दिखावे की इस प्रवृत्ति के समकालीन संदर्भों से आप भली भांति परिचित हैं । मंत्री से लेकर बड़े-बड़े एनजीओ तक 'स्वच्छ भारत' अभियान के नाम पर किस तरह का दिखावा कर रहे हैं, यह कोई छुपी हुई बात नहीं है । भीष्म साहनी की एक और कहानी याद आती है 'मेड इन इटली' जिसमें विमला नामक एक मध्यवर्गीय स्त्री सिर्फ यह जताने के लिए कि उसने विदेशी बैग खरीदा है 'मेड इन इंडिया' के लेबल को हटवाकर 'मेड इन इटली' का लेबल बैग पर चिपकाती है । ऐसा नहीं है कि यह प्रवृत्ति महिलाओं में ही है, पुरुषों में भी यह प्रवृत्ति कहीं अधिक रूप में है । इस तरह इस संग्रह में 'मैं भी दिया जलाऊँगा माँ' जैसी कहानी भी है जिसमें मुस्लिम बच्चे के मनोविज्ञान के माध्यम से गुजरात नरसंहार की त्रासदी को उजागर किया है तो वहीं 'दुलारी का प्रेमी' जैसी कहानी भी, जो उन गुमनाम बस्तियों के काले सच को सामने लाती है जिसमें हमारा तथाकथित सभ्य और नैतिक समाज सिर्फ रात के अँधेरों में ही गश्त लगाता है । लेकिन यहाँ मैं विशेष रूप से उन दो कहानियों पर बात करना चाहता हूँ जो हमारे सामने हिंदुस्तान के भविष्य की तस्वीर खींचती हैं । उनमें से एक कहानी 'आजादी का शताब्दी समारोह' और दूसरी 'रिपोर्टर की डायरी' है। ये दोनों कहानियाँ कहीं-कहीं हरिशंकर परसाई ''अगली शताब्दी का शहर'' और श्रीलाल शुक्ल की भी याद दिलाती हैं । नाटकीय अंदाज में लिखी गई इन दोनों कहानियों के केंद्र में 2047 का हिंदुस्तान है । यानि कि आपके और मेरे भविष्य का हिंदुस्तान ।

कहानी की शुरुआत होती है सन् 2047 से, पूरा देश आजादी के शताब्दी समारोह की तैयारियों में लगा हुआ है । इस मौके पर सत्ता रूढ़ पार्टी अपनी उपलब्धियों का घोषणा पत्र तैयार कर रही है । इस घोषणा-पत्र में भविष्य के हिंदुस्तान की झलक है। पार्टी सबसे पहले सांस्कृतिक उपलब्धियों की चर्चा करती है 'आजादी के बाद की पहली अर्धशताब्दी में केवल तीन प्रमुख शहरों के नाम बदले गए थे- बंबई, मद्रास.. आदि । कुछ के केवल हिज्जे बदले गए थे, जैसे-कानपुर । उनके हिज्जों में से अंग्रेजियत निकाल दी गई थी। आपको यह जानकर प्रसन्नता होगी कि उसके अर्द्धशताब्दी में सत्रह नगरों के नामों का भारतीयकरण किया गया है, जैसे- दिल्ली का हस्तिनापुर, पटना का पाटलिपुत्र, आदि' । साहनी की पैनी दृष्टि देखिए भारतीयकरण के नाम पर जो वो तब लिख रहे थे वही आज हो रहा है। इसे भारतीयकारण कहें या हिंदुकरण यह आपकी सहूलियत है । राजनीति का ये चेहरा उनकी पहले की कहानियों में इस रूप में कम ही दिखाई देता है। भीष्म

साहनी जिस 2047 की बात कर रहे थे उसकी झलक हमें अभी दिखाई दे रही है । आज जब गुड़गांव, गुरुग्राम हो सकता है तो दिल्ली को हस्तिनापुर होने में ज्यादा समय नहीं लगेगा।

सांस्कृतिक उपलब्धियों के साथ-साथ सामाजिक और राजनैतिक सरोकारों पर भी पार्टी अपनी उपलब्धियाँ और घोषणाएँ बताती है। हिंदुस्तान के लिए जनसंख्या नियंत्रण एक बड़ी चुनौती है । एक अनुमान के अनुसार 2050 तक भारत की जनसंख्या 161 करोड़ के पार चली जाएगी और हिंदुस्तान दुनिया का सबसे ज्यादा जनसंख्या वाला देश हो जाएगा । जनसंख्या नियंत्रण और उससे कारगर तरीके से निपटने में अभी तक सरकारें विफल ही रही हैं । जिसका बड़ा कारण अशिक्षा और जागरूकता का अभाव भी है । लेकिन भीष्म साहनी आजादी के शताब्दी समारोह के उपलक्ष्य में जनसंख्या नियंत्रण के लिए सत्ता रूढ़ पार्टी के जिन उपायों का जिक्र करते हैं वह आज की राजनीति पर करारी चोट है । जनसंख्या विस्फोट से निपटने के लिए पार्टी संयोजक महोदय महामारी से लेकर प्राकृतिक आपदा और एड्स जैसी बीमारियों का जिक्र करने के बाद कहते हैं कि 'आपको जानकर संतोष होगा कि सड़क हादसों में मरने वालों की संख्या गत पचास वर्षों में स्विट्जरलैंड की पूरी आबादी से अधिक है । हम इस पर भी रोक लगा सकते थे पर, ध्यान रहे कि जो हादसे घर परिवार वालों के लिए दुखद होते हैं, वह देश और जाति के लिए हितकर होते हैं' । राजनीति की इस नियत को कम ही रचनाकारों ने पकड़ा है । अगर संवेदनाओं को किनारे करके आंकड़ों की बात करूँ तो नेशनल क्राइम रेकॉर्ड्स ब्यूरो ने सड़क दुर्घटनाओं और आत्महत्याओं पर एक रिपोर्ट गृह मंत्रालय को सौंपी थी, अब वह रिपोर्ट सार्वजनिक है उस सर्वे के अनुसार '2014 में यानि एक साल में साढ़े चार लाख सड़क दुर्घटनाएँ हुई हैं जिनमें से 1 लाख 41 हजार से ज्यादा लोगों की मौत हो गई । पिछले दस सालों में सड़क हादसों में होने वाली मौतों में 42 प्रतिशत की वृद्धि हुई है' । यह एक सरकारी आंकड़ा है, और तथ्य भी जो भविष्य की तस्वीर भी साफ करता है । लेकिन जनसख्या नियंत्रण पर सत्ता रूढ पार्टी ज्यादा ही गंभीर है, संयोजक आगे कहते हैं 'हमने विदेशों में बनने वाली दवाइयों का आयात आसान कर दिया है, जो जाहिरा तौर पर तो इलाज के लिए बनी हैं, पर जो बीमार की जान लेने में भी सहायक होती हैं' । यह तथ्य भी अब उजागर हो गया है कि विकसित देशों में जो दवाइयाँ प्रतिबंधित हैं वह भारत में खुले आम बेची जाती हैं । उनके प्रयोग से कितनी मौते होती हैं यह कहीं दर्ज नहीं है । बिजनेस स्टेंडर की खबर के मुताबिक 'भारत चीन, इटली और अन्य देशों से प्रति वर्ष 12,000 करोड़ रुपये की दवाओं का आयात करता है और कुछ समय पहले ही कई शिकायतें आने के बाद भारतीय औषधि महानियंत्रक (डीसीजीआई) ने दवाओं की गुणवत्ता सुनिश्चित करने के लिए आयात करने से पहले दवा कंपनियों की विदेशों में स्थित इकाइयों का निरीक्षण करने का फैसला लिया है' । इस बात से ही अंदाजा लगाया जा सकता है कि यह कितनी गंभीर समस्या है । लेकिन राजनीति के लिए यह कोई मुद्दा या समस्या नहीं है ।

भीष्म साहनी ने बड़े ही महीन तरीके से राजनीति के खोखलेपन को उजागर किया है । हमारा समाज और हमारी राजनीति किस ओर जा रही है यह उसकी झलक नहीं झाँकी है ।

राजनीति के इस खोखलेपन में हमारा भी उतना ही सहयोग है जितना इस पर काबिज लोगों का है । कहानी आगे बढ़ती है और भीष्म साहनी एक और सच हमारे सामने रखते हैं । संयोजक महोदय कहते हैं 'वास्तव में आबादी कम करने की दिशा में अनेक सुझाव समिति के सामने रखे गए थे । भ्रूण- हत्या को लेकर भी एक सुझाव था कि ऐसी गोलियाँ मुफ्त बांटी जाएँ, जिनसे अपने आप ही गर्भपात हो जाए , परंतु इसे अभी मान्यता नहीं मिली' । भ्रूण हत्या जैसी गंभीर समस्या 21वीं सदी के भारत की देन है । लड़कियों के प्रति हमारा समाज कितना क्रूर है, इस बात का अंदाजा इसी से लगाया जा सकता है कि अलटेरनेटिव इकनॉमिक सर्वे की रिपोर्ट के अनुसार हर साल 6 लाख बेटियों को भ्रूण में ही मार दिया जाता है । यह भी हिंदुस्तान के विकास की एक तस्वीर है। भीष्म साहनी ने भविष्य के भारत को कई स्तरों पर भाँपा है। भारत निरंतर विकास के पथ पर अग्रसर है। देश का जीडीपी, सेन्सेक्स की तरह गोते लगा रहा है। हम महाशक्ति बनने से कुछ ही दूरी पर हैं। लेकिन इन सबसे इतर हिंदुस्तान की तरक्की का यह चित्र देखिए 'मेरा जहाज देर से उतरा और मैं लालकिला वाला आयोजन नहीं देख पाया, जहाँ से हर साल प्रधानमंत्री राष्ट्र को संबोधित करते हैं।

इस पर महिला छूटते ही बोली, अब नहीं होता, सर ! अब केवल टेलीविजन पर प्रधानमंत्री भाषण देते हैं । अरे! और लालकिला ?

वहाँ अब बहुत बड़ा होटल बन गया है सात सितारा होटल । अंतर्राष्ट्रीय होटल । एशिया का सबसे बड़ा होटल, सर ! रात के वक्त ऐसी जगमग होती है कि आपको क्या बताऊँ ! रंगारंग किरणें फूटती हैं । एक अमेरिकी फर्म चला रही है । कहते हुए सहसा ही उसे याद आया, वहीं पर कैसीनो खुलेगा, सर, आज रात को ही उसका उद्घाटन होगा । वह जरूर देखिए । पहला दाँव शिक्षा-संस्कृति मंत्री लगाएंगे' । इस पर शायद बहुत कुछ कहने की अवश्यकता नहीं है । वर्तमान में चल रही राजनीति और कॉर्पोरेट की दलाली के गठजोड़ से यह दिन बहुत दूर नहीं है । मल्टीस्क्रीन भाषण का नमूना तो हम 2014 के चुनावों में देख चुके हैं । इसलिए मैं बार-बार यह कह रहा हूँ कि भीष्म साहनी जितने अपने समय के लेखक थे उससे कहीं अधिक वह आज के और भविष्य के लेखक हैं । गाँधी को लेकर औसत हिंदुस्तानी के विचार बहुत कम नकारात्मक होंगे भले ही वह उनके विचार और पथ को मानने वाला हो या न हो । लेकिन वर्तमान राजनीतिक परिदृश्य में गाँधाी दिन-ब-दिन हाशिये पर धकेले जा रहे हैं । भीष्म साहनी ने 2047 में गाँधी की क्या स्थिति होगी उसको कुछ यूं चित्रित किया है 'अंधेरा उतर रहा था, जब हम राजघाट पहुँचे । मैं तनिक चौंका । यहाँ पहले वाले राजघाट की बात नहीं थी । कुछ सड़क पहले ही ऊबड़- खाबड़ हो रही थी । गाड़ी गड्ढ़ो पर से हिचकोले खाती आगे बढ़ रही थी । प्रवेश पथ पर अंधी मेहराब तो थी, पर ऊँची दीवार खस्ता हो रही थी । जगह-जगह से ईंटें टूट-टूटकर गिर रही थी । मैं अंदर गया । महिला-ड्राइवर ने ठीक ही कहा था, यहाँ झाड़-झंझाड़ के अलावा कुछ नहीं था । चबूतरा भी झाड़ियों के नीचे जैसे दबा हुआ था । सायंकाल के बढ़ते अंधेरे में खंडहर सा लग रहा था । झाड़ियों से अटे चबूतरे के पास खड़ा होते हुए मुझे डर भी लग रहा था कि कहीं कोई बिच्छू या साँप काट न

खाए ! चबूतरे से थोड़ी दूरी पर चार-पाँच बेघर से लोग बैठे गाँजे के कश लगा रहे थे- मुझे ऐसा ही जान पड़ा' । यह खस्ता हाल दीवारें दरअसल हमारे लोकतंत्र की हैं हमारी व्यवस्था की हैं । इस लोकतंत्र को जर्जर करने में जिनका महत्वपूर्ण योगदान है, उनकी स्थिति ये है 'कार्यकारणी की सिफारिशों में से एक सिफारिश यह भी है कि लोकसभा और राज्यसभा के गिने-चुने सदस्यों को नहीं, बल्कि सभी सदस्यों को सुरक्षा गार्ड दिए जाएँगे । हम जानते हैं कि सुरक्षा गार्ड संसद सदस्य की प्रतिष्ठा का प्रतीक बन गया है और जनतंत्र में सभी को प्रतिष्ठा का समान अधिकार है । इतना ही नहीं यदि किसी संसद सदस्य के विरुद्ध कानूनी कार्रवाई चल रही है तो मुकदमे के दौरान भी उसे सुरक्षा गार्ड उपलब्ध होगा और यदि उसे जेलखाने में भेजा जाता है तो वहाँ भी उसे सुरक्षा गार्ड की सुविधा प्राप्त होगी । ... समिति ने सदस्यों के भत्ते पर भी पुनः विचार किया है । सुझाव है कि आजीवन भत्ता मिलता रहे, इतना ही नहीं, मरणोपरांत भी दो पीढ़ियों तक उनके परिवार वालों को भत्ता मिलता रहे । सिफारिश इस बात की भी की गई है कि जिस सरकारी घर में वे रहते रहे हैं, वह उन्हीं के नाम कर दिया जाए' । भीष्म साहनी ने जो तस्वीर हमारे सामने रखी है उससे समझने में कोई दिक्कत नहीं होती है कि क्यों लोकतंत्र की दीवारें जर्जर हो रही हैं ? लोकतंत्र की ईटें क्यों हर चुनाव में खिसकती जा रही हैं?

भीष्म साहनी ने आजाद भारत के 100 सालों की उपलब्धियों को जिस रूप में चित्रित किया है उसे पढ़ते हुए बरबस ही भारतेन्दु के नाटक 'भारत दुर्दशा' की याद आती है । अगर आज भारत दुर्दशा नाटक लिखा जाता तो शायद ऐसा ही कुछ होता । भारतीय लोकतंत्र के भविष्य का यह आकलन न तो कोरी कल्पना है न कोई यूटोपिया यह हिंदुस्तान के लोकतंत्र और हमारी आपकी नियति है । संस्कृति से लेकर राजनीति, अर्थव्यवस्था, 'डॉलर भुनाने हों तो मैं भुना दूँगी.....सरकारी रेट तो 105 रु डॉलर का है । मैं डेढ़ सौ दिलवा दूँगी' और समाज की दरिद्रता तक को, 'इन सात दिनों में, सर, सरकार ने कड़ा हुक्म दिया है कि कहीं कोई झगड़ा, दंगा, झड़प नहीं होनी चाहिए । .. कहीं कोई भिखमंगा, अपाहिज, लंगड़ा लूला नजर नहीं आना चाहिए' भीष्म साहनी ने बेरहमी से चित्रित किया है । भीष्म साहनी ने 2047 के भारत का जो खाका हमारे सामने रखा है, उसमें सांस्कृतिक और राष्ट्रीयता के प्रतीक, लाल किले और गांधी को लेकर जो तस्वीर गढ़ी गई है वह भयानक है । इसलिए यह जरूरी है कि इन कहानियों को कहानी की तरह नहीं बल्कि चेतावनी की तरह समझा और पढ़ा जाना चाहिए ।

प्रकाश चंद्र, ईमेल—prakashupretti@gmail-com
फोन न. 9657062744, 7042616767

✧ ✧ ✧

भारतीय समाज में नारियों की दशा एवं दिशा

आशा कुमारी

भारतीय समाज में सभी कालों में स्त्रियों की स्थिति एक जैसी नहीं रही देश के विभाजन की उथल - पुथल ने नारी को नयी संज्ञा प्रदान की , वहीं नयी समस्याओं को भी उत्पन्न किया । स्वातंत्र्योत्तर युवा नारी की छटपटाहट और उनके अलग - अलग संघर्षो को उन्होने आज की लेखिकाओं ने उकेरा है, बदलाव को समझा और नारी की पीड़ा को महसूस किया है । शुरू में उनका विकास क्षेत्र पारिवारिक जीवन रहा । बाद में सामाजिक असमानता एवं दोहरे मानदण्डों ने नारी के मन को असंतोष से भर दिया ।

भारतीय नारी परिवर्तनों के लंबे दौर से गुजरी है । वैदिक काल में पुरूषों के साथ समानता और सम्मानजनक स्थिति से लेकर मध्यकाल की निम्न स्थिति और आज समान अधिकार की मांग करते हुए अनेकों समाज सुधारों के परिणामस्वरूप उनकी वर्तमान स्थिति का इतिहास काफी उत्तेजक स्थितियों से भरा हुआ है । भारतीय सामाजिक व्यवस्था में महिलाओं की स्थिति दीर्घकाल से विवाद का विषय रही है । ‘‘ रूबैक ‘‘ तथा ‘‘ फ्रायड ‘‘ जैसे विद्वानों ने यहाँ तक माना है कि नारी में कुछ ऐसे जन्मजात दोष होते हैं, जिनके कारण वह पुरूषों के साथ समानता का दावा नहीं कर सकती । जब कि प्लेटों तथा गाँधी जैसे चिंतको ने लिंग के अतिरिक्त पुरूष - स्त्री में कोई भेद नहीं माना है।

संदर्भ स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी साहित्य में कामकाजी महिलाओं का संघर्ष विषय पर आयोजित हिन्दी विभाग राष्ट्रीय संगोष्ठी में प्रकाशित ‘ स्मारिका ‘ जे0 डी0 वीमेंस कॉलेज पटना, 30 -31 जनवरी ,2012 , पृष्ठ सं0 - 141

हमारे देश की करीब आयी आबादी गरीबी से ग्रस्त है और उन्हें रोजाना दो जून की रोटी भी मयस्सर नहीं होती और न तन पर कपड़ा है। वे धरती बिछाने एवं आकाश ओढ़ने के अभ्यस्त होने के लिए अभिशप्त है । विशेषकर महिलाओं की दशा और दिशा घर से संसद तक, आंगन से बाजार तक , संयोग से

वियोग तक , खेत से खलिहान तक , विद्यालय से कारखाने तक , अस्पताल से श्मशान तक , सधवा से विधवा तक , विवाह से बलात्कार तक बेहद चिंताजनक है , यानि जन्म से मृत्यु तक जगह - जगह और पल - पल उन्हें शोषण , उत्पीड़न , हिंसा और अपराध का शिकार होना पड़ रहा है । हम नियोजित विकास के 62 वर्ष पूरे कर चुके है , फिर भी ' विकास ' के नाम पर दो मिनट का मौन व्यक्त करती महिलाएँ खुले मैदान में शौच करने के लिए मजबूर हैं , कई इलाकों में बच्चियों को गर्भ के अंदर या जन्म के बाद मार देने की परिपाटी है , उन्हें विद्यालय न भेजकर घरों में , खेत - खलिहानों में और कारखानों में काम करने के लिए मजबूर किया जाता है , जिससे वे अपना बचपन हमेशा के लिए गिरवी रख देती है। इतना ही नहीं , उत्तर भारत के कई इलाकों में विशेषकर राजस्थान में बाल - विवाह प्रथा का प्रचलन होने से कच्ची उम्र में ही उन्हें गृहस्थ जीवन एवं परिवार का दायित्व निभाना पड़ता है तथा असमय गर्भ धारण करने से उन पर तथा उनके बच्चों के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है ग्रमीण क्षेत्रों में अभी भी पर्दा प्रथा कायम है जिस बंधन के कारण महिलाएँ अपनी जरूरतों को पूरा नहीं कर पाती है। इतना ही नहीं , बच्चियों का अपहरण और बिक्री करने के मामले भी देश के कई भागों में पाए गए हैं , जिन्हें अंततः देह व्यापार के लिए कोठों पर शरण मिलती है। जहाँ वे पशुवत् जिंदगी गुजारती है । विगत वर्षो में बलात्कार ,छेड़छाड़ , अपहरण , अश्लील प्रदर्शन आदि यौन -अपराध तेजी से बढ़े हैं । दहेज - हत्या के मामले भी बढ़ रहे है । यानि जैसे - जैसे हम ' ज्यादा ' शिक्षित ' और ' विकसित ' होते जा रहे हैं , वैसे महिलाओं के प्रति हमारी मानसिकता और ज्यादा विकृत होती जा रही है ।

संदर्भ - 2 भारतीय महिलाओं की दशा - ''सुभाष शर्मा'' पृष्ठ सं0 13 -14

भारतीय समाज में सभी कालों में स्त्रियों की स्थिति एक जैसी नहीं रही देश के विभाजन की उथल - पुथल ने नारी को नयी संज्ञा प्रदान की , वहीं नयी समस्याओं को भी उत्पन्न किया । स्वातंत्र्योत्तर युवा नारी की छटपटाहट और उनके अलग - अलग संघर्षो को आज की लेखिकाओं ने उन्होंने अपनी कहानियों में उकेरा है नारी की पीड़ा को बदलाव को समझा और महसूस किया है । शुरू में उनका विकास क्षेत्र पारिवारिक जीवन रहा । बाद में सामाजिक असमानता एवं दोहरे मानदण्डों ने नारी के मन को असंतोष से भर दिया । वह एक ओर शिक्षित और स्वावलम्बी बनकर अपने घर - परिवार का बोझ उठा रही है या पति का हाथ बँटा रही है, दूसरी ओर सामाजिक पारिवारिक बंधनो में जकड़ी कसमसा रही है । महिला - लेखन नारी दुनिया को बेहतर बनाने की दिशा में अग्रसर है । अब उनके लेखन में इस शोषण का विरोध और न्याय का पक्ष दिखायी पड़ता है । समाज की सही पूर्णता के लिये आधे हिस्से को बदलना चाहिये । आज लेखिकाओं का सामाजिक चिंता से सरोकार दिखायी देता है और संस्कारों की रूढ़ियों के बीच दबती - पिसती नारी के बदले नारी स्वतंत्रता में स्वस्थ मानसिकता से भरपूर जीवन की सार्थकता दिखायी पड़ती है । (पृष्ठ सं0 - 5) संदर्भ - 3

हिन्दी साहित्य में नारी विमर्श पर जो स्थिति लेखिकाओं द्वारा बतायी गई है वही नारी की स्थिति समाज में है । तसलीमा नसरीन , नासिरा शर्मा , गीता श्री , ममता कालिया , मेहरून्निसा

परवेज , मृदुला परवेज , मुदुला गर्ग , सूर्यबाला आदि लेखिकाओं की कहानियाँ स्त्री दशा एवं दिशा को प्रस्तुत करती है। इनके कुछ कहानियों के चर्चे है ।

आज के दौर में शिक्षित और आत्म -निर्भर स्त्री अपने अधिकारों को लेकर सचेत है । स्त्री पुरूष को तभी अच्छी लगती है , जब तक कि वो उसके संकेतों पर नाचती रहे और किसी भी निर्णय में अपना मत न रखें । ' मेहरून्निसा परवेज ' की ' खामोशी की आवाज ' की अनु के प्रति उसके पति रमेश का व्यवहार उपेक्षापूर्ण होता है । रमेश अनु की इच्छा - अनिच्छा की परवाह नहीं करता । उल्टा अनु पर अहसान करता है कि वही तो कमाकर उसका खर्च उठा रहा है । अंत में अनु परेशान होकर रमेश के व्यवहार का प्रतिकार करती हुई कहती है , '' दो समय का खाना और कपड़ा देते हो तो इसका मतलब नहीं कि मैं तुम्हारी खरीदी लौंडी हूँ । मुझे सब कुछ देकर भी तुम मुझे कुछ नहीं दे पाये , तुमने समझने की कोशिश ही नहीं की कि मुझे क्या चाहिए । '' यहाँ अनु उस स्त्री वर्ग का प्रतिनिधित्व करती है जो चुपचाप सिसकते हुए पति के समस्त अत्याचारों को सहन नहीं करती बल्कि समय आने पर अपना विरोध भी दर्ज करवाती है ।

''स्त्री - विमर्श का मुद्दा ज्वलन्त होने से , विचारों के मंथन से यह लाभ तो हुआ है, उपलब्धि भी हुई है कि औरते खुद के हीन होने के अहसास से मुक्त हुई हैं । वैचारिक स्तर पर ही सही साथ - साथ बेहतर या उच्चता ग्रंथि से भी मुक्त हुई है ।''

भारतीय समाज में पत्नी की भूमिका का निर्वाह करती स्त्री के व्यक्तित्व में क्रांतिकारी परिवर्तन हुआ है और उसके सम्बंध में परम्परागत, रूढ़ मान्यताओं पर प्रश्न चिन्ह लगाया जाने लगा है । डॉ0 शीला रजवार के अनुसार , '' पहले नारी को भावना की कसौटी पर कसा जाता था । किन्तु अब उसका मानदण्ड बौद्धिकता है। यह बौद्धिकता विद्रोह और निर्लिप्तता दो रूपों में अपने आत्म - सम्मान की रक्षा करते हुए परम्परागत रूप से मान्यताओं का विरोध करने लगी है। पत्नी की इस नई मन: स्थिति का चित्रण पूरी सत्यता के साथ महिला कथाकारों ने किया है ।

इसी तरह मृदुला गर्ग की ' मेरी ' कहानी में महेन्द्र और मीता के मध्य तनाव का कारण मीता के गर्भवती होने की संभावना है । महेन्द्र सोचता है , '' इतनी जल्दी बच्चा हो गया तो मेरे हाथ पाँव बँध जायेंगे । मैं कुछ नहीं कर सकूँगा ।'' महेन्द्र सामन्तवादी मनोवृति के वशीभूत हो बच्चे को ईश्वरीय देन न मानकर अपनी उन्नति में बाधक मानते हुए क्रूरता से उस अजन्मी जान को नष्ट करना चाहता है । पत्नी मीता शिशु को जन्म देना चाहती है । मीता को समझा - बुझाकर वह अस्पताल भी ले जाता है । लेकिन मीता एबोर्शन करवाने से मना कर देती है । मीता पति के कठोरतापूर्ण निर्मम आदेश का पालन न करते हुए उससे विद्रोह कर अपने मातृत्व की पूर्ति कर लेती है। इस दृष्टि से यह कहानी स्त्री -विमर्श से जुड़े एक नये आयाम को समाज के समक्ष उदघाटित करती है और स्त्री के मातृत्व संबंधी अधिकार पर सोचने के लिये बाध्य करती है ।

संदर्भ - 4 इण्टरनेट सामग्री

नारी की दशा एवं दिशा की चर्चा करते हुए मैं सूर्यबाला की कुछ खास कहानियों की चर्चा करती हूँ।

वर्तमान व्यवस्था में ईमानदारी से जीवन जीना और मानवीय मूल्यों के प्रति आस्था बनाए रखना बहुत कठिन हो गया है, किन्तु फिर भी समाज में कुछ लोग आज भी बेइमानी मूल्यहीनता , शोषण , अन्याय आदि के साथ समझौता न कर उनके विरूद्ध आवाज उठाने में लगे हुए हैं और सफल भी होते है । सूर्यबाला की कहानी ' मुक्तिपर्व ' में नारी अपने पति के साथ हुए हर अन्याय और उत्पीड़न का विरोध करती है , जोखिम उठाकर अपने हक के लिए लड़ती हैं और विजयी होते हुए कहती है – '' लड़ाई जीत ली मैंने तुम्हारी सुशांत .... पहली बार दुनिया की अदालत ने ईश्वर की अदालत की अदालत से ज्यादा फैसला दिया है । देखो ! तुम पर लगे सारे आरोपों को गलत साबित कर तुम्हें पूरी निष्ठा और सम्मान सहित आरोपों से मुक्त किया जाता है ।''

'' सुबह के इंतजार तक '' की नायिका मानू की कारूणिक कथा है । मानू के माध्यम से लेखिका ने परिस्थितिजन्य त्रसदी के बीच एक नारी की कथा जो स्वावलंबन , उत्सुकता और लगातार परिश्रम करने वाली न जाने कितनी किशोरियों स्त्रियों की कथा है । नायिका को झूठी दुनिया के मध्य अपने दुःखों को दिखलाना नहीं आता है , वह आर्थिक स्थिति का विश्लेषण करती हुए कहती है , लेकिन यह सारी तंगहाली अभाव और कचोटे ज्यादातर हमारे अंदर से ही गुजरती चली जाती है । ऊपर अपने चेहरों तक जहाँ तक हो सकता हम उसकी छाया तक नहीं पड़ने देते । पृ0 सं 62 -63

सूर्यबाला कामकाजी महिलाओं के साथ होनेवाले अन्याय और शोषण के प्रति जागरूक है तथा यह सोचने को विवश हैं कि समाज के इस प्रदूषण से औरतों को कैसे बचाया जाए ? क्योंकि अधिकतर स्त्रियाँ अपने ऊपर होनेवाले इस प्रकार के अन्याय और अत्याचार इसलिए सहती रहती हैं या असम्मान जनक स्थिति से भी समझौता करने को विवश होती है कि जल में रहकर मगरमच्छ से बैर नहीं पाला जा सकता । उन पर बदनामी का डर , नौकरी से निकाले जाने का खतरा , हमेशा नंगी तलवार की तरह लटकता रहता है । सूर्यबाला कामकाजी महिलाओं के उत्पीड़न की इस बढ़ती हुई घटनाओं से चिंतित हैं , लेकिन नारी का शोषित दयनीय , उद्धार की याचना करता सा रूप उन्हें कभी नहीं भाया । उनकी अधिकतर कहानियों की नारियाँ अपनी लड़ाई आप लड़ती हुई दिखाई देती है । इसलिए वह इन कामकाजी महिलाओं से भी अपने व्यावहारिक सोच में व अपने आचरण में उसी प्रकार के परिवर्तन की अपेक्षा करती हैं , जिससे वह अपने ऊपर

होनेवाले किसी भी प्रकार का अन्याय , शोषण अनैतिक दबाव का विरोध कर सकें । कोई नारी पुरूष सहकर्मी , अधिकारी का अनुचित व्यवहार या इच्छा केवल इसलिए नहीं स्वीकारे कि वह महिला है , असहाय है , अकेली है , कमजोर है । आज नारी अपनी इस मानसिकता का त्याग करे और अपने ऊपर होनेवाले हर प्रकार के अत्याचारों की लड़ाई वह स्वयं लड़े । सूर्यबाला की कहानी ' पुल टूटते हुए ' में माया का चरित्र इसका प्रामाणिक चित्र है । जहाँ आशीष गांगुली के अपने साथ अनुचित हरकत करने पर उसे उसका हाथ अपने कंधो से सिकोड़ कर झाड़ देने का साहस दिखाती है कि '' इसी तरह अब सीधे - सीधे सब कुछ झाड़ देने की आदत सी पड़ गई है। झाड़ - झूड़कर निश्चिंत हो जाती हूँ , एक बोल्ड बेबाक लड़की की तरह जिसे तकिये पर सिसकती , अँसुआती , पालतू सी जिंदगी से चिढ़ है ।'' पृ0 सं - 54 -56

'' सुबह के इंतजार तक '' की नायिका मानू की कारूणिक कथा है । मानू के माध्यम से लेखिका ने परिस्थितिजन्य त्रसदी के बीच एक नारी की कथा जो स्वावलंबन , उत्सुकता और लगातार परिश्रम करने वाली न जाने कितनी किशोरियों, स्त्रियों की कथा है । नायिका को झूठी दुनिया के मध्य अपने दुःखों को दिखलाना नहीं आता है , वह आर्थिक स्थिति का विश्लेषण करती हुए कहती है , लेकिन यह सारी तंगहाली अभाव और कचोटे ज्यादातर हमारे अंदर से ही गुजरती चली जाती है । ऊपर अपने चेहरों तक जहाँ तक हो सकता हम उसकी छाया तक नहीं पड़ने देते । पृ0 सं 62 -63

सूर्यबाला के कथा साहित्य के नारी पात्रों का अध्ययन करके स्पष्ट आभास होता है कि आज के चुनौतिपूर्ण , संघर्षमय एवं घुटन भरे जीवन में मानसिक और आत्मिक स्तर की लड़ाइयाँ जारी हैं , नारी और पुरूष इस द्वंद से मुक्त नहीं हैं । लेखिका के अधिकांश पात्र लेना नहीं देना जानते हैं , सहनशीलता का वरण करते हुए जीवन में सामंजस्य बैठाने का प्रयास करते हैं । कामायनीकार जयशंकर प्रसाद के शब्दों में लेखिका सूर्यबाला के नारी पात्र शायद यही संदेश दे रहे है - इस समर्पण में कुछ नहीं केवल उत्सर्ग झलकता है,

मैं दे दूँ और नहीं कुछ लूँ ,

इतना ही सरस झलकता है ।

संदर्भ -6 (पृष्ठ संख्या -65) श्शब्द - शब्द मानुषगंधा संपादक डॉ0 वेद प्रकाश अमिताभ

✧ ✧ ✧

रामकृष्ण परमहंस का आध्यात्मिक चिंतन

डॉ. आलोक प्रभात

ब्रह्म के सम्बन्धा में उन्होंने यही दृष्टिकोण व्यक्त किया है जो उपनिषदों में वर्णित है। उन्होंने कहा ब्रह्म क्या है जो मुँह से नहीं कहा जा सकता, सभी चीजे झूठी हो गई...... मुँह से उच्चरित हुई है इसी से झूठ है - पर केवल एक वस्तु झूठी नहीं है, वह वस्तु ब्रह्म है। ब्रह्म वाक्यमन से अतीत है। उन्होंने कहा कि निर्गुण और सगुण में कोई भेद नहीं है। जो निगुर्ण है वही सगुण है जो गुणातीत है वही षडैश्वर्यपूर्ण भगवान है। इसलिए किसी एक पर विश्वास रखने से काम चल जायेगा।

रामकृष्ण परमहंस (सन् 1836 - 1886) भारत में जितने भी सामाजिक-धार्मिक आन्दोलन अब तक हुए उन सब में भारत के अतीत के प्रति इतना विश्वासी फिर भी भविष्य की आशामयी संभावनाओं से युक्त, राष्ट्रीय जागृति की चेतना से संपृक्त साथ ही अपने दृष्टिकोण में विश्वात्मक ऐसा कोई भी सशक्त व्यक्ति नहीं हुआ जो रामकृष्ण के व्यक्तित्व की टक्कर ले सके। अत: वे ही भारत की धार्मिक आत्मा के पूर्ण प्रतिनिधि सन्त माने जा सकते हैं जिन्होंने प्रसुप्त भारतीय आत्मा में सच्ची धार्मिक चेतना को जागृत किया। वे भक्त और संत, ज्ञानी और योगी सब कुछ थे। उन्होंने भारतीय धर्मों में अब तक प्रचलित साधना की सभी भूमिकाओं पर से उन-उन मतों एवं सम्प्रदायों के अनुरूप सत्य का साक्षात्कार किया था। वैष्णव और शैव, शाक्त और वेदान्त आदि की विभिन्न पद्धतियों से आत्मा की अपरोक्षानुभूति प्राप्त करके उन्होंने बताया था कि सभी मार्ग उसी एक गन्तव्य की ओर साधक को ले जाते हैं।"[1] आवश्यकता है निष्ठा और विश्वास की, भक्ति और उसके प्रति आतुरता की। न केवल इतना ही प्रत्युत उन्होंने ईसाई और इस्लाम धर्मों की साधना भूमिकाओं से भी सत्य की अनुभूति प्राप्त की। धर्म की इतनी विविध भूमिकाओं से भी सत्य का साक्षात्कार करने वाला संत प्राचीन और आधुनिक भारत में तो हुआ ही नहीं, विश्व की सभ्य-जातियों के धार्मिक इतिहास में भी ऐसा उदाहरण उपलब्ध नहीं है। योगाभ्यास, पराशक्ति, ईश्वर-आसक्ति, निर्विकल्प समाधि,

ब्रह्म-साक्षात्कार और सच्चिदानन्द आदि आध्यात्मिक शास्त्र के ये शब्द उनके निकट शब्द-मात्र नहीं थे, प्रत्युत उनकी अनुभूति के विभिन्न रूपों को व्यक्त करने वाले विभिन्न अंग थे जिनका उन्होंने स्वयं साक्षात्कार किया था। इसीलिये उनकी शिक्षाओं में सरलता और गंभीरता विद्यमान है।

'काली' उनका इष्ट थी। पर यह काली साम्प्रदायिक बंगालियों की काली नहीं। वह लीलामयी आद्याशक्ति है। वह सृष्टि स्थिति और प्रलय करती है, उन्हीं का नाम काली है। काली ही ब्रह्म है और ब्रह्म ही काली। स्पष्ट है कि उन्होंने ब्रह्म की माँ-रूप में उपासना की है, वह माँ जो ममतामयी-वात्सल्यमयी है सचमुच वह विराट् माँ है। उन्होंने जिन दार्शनिक विचारों का प्रतिपादन किया वे अनुभवसिद्ध और साक्षात्कृत थे। वे पढ़े-पढ़ाये अथवा सुने-सुनाए नहीं थे। उनके दार्शनिक विचारों में उपनिषदों के ऋषियों के द्वारा अनुभूत सत्यों की ही पुनः प्रतिष्ठा हुई है।

ब्रह्म के सम्बन्ध में उन्होंने यही दृष्टिकोण व्यक्त किया है जो उपनिषदों में वर्णित है। उन्होंने कहा ब्रह्म क्या है जो मुँह से नहीं कहा जा सकता, सभी चीजे झूठी हो गई......मुँह से उच्चरित हुई है इसी से झूठ है - पर केवल एक वस्तु झूठी नहीं है, वह वस्तु ब्रह्म है। ब्रह्म वाक्यमन से अतीत है। उन्होंने कहा कि निर्गुण और सगुण में कोई भेद नहीं है। जो निगुर्ण है वही सगुण है जो गुणातीत है वही षडैश्वर्यपूर्ण भगवान है। इसलिए किसी एक पर विश्वास रखने से काम चल जायेगा।

निराकार पर विश्वास करते हो अच्छा है, पर यह न कहना कि यही सत्य है, और सब झूठ। यह समझना कि निराकार भी सत्य है और साकार भी सत्य है, जिस पर तुम्हारा विश्वास है उसी को पकड़े रहो। 'रामकृष्ण परमहंस' जी ब्रह्म की सर्वव्यापकता में भी विश्वास रखते हैं। उन्होंने कहा है कि वह विभु के रूप में सब प्राणियों में है - चीटियों तक में है। पर शक्ति का तारतम्य होता है, उन्होंने ब्रह्म और उसकी शक्ति की अभेद की अनुभूति भी प्राप्त की है जिसके आधार पर उन्होंने कहा कि ब्रह्म और शक्ति में अभेद है, जैसे कि अग्नि और उसकी दाहिका शक्ति। ब्रह्म के निष्क्रिय - सक्रिय रूप की चर्चा करते हुए उन्होंने कहा कि एक ही वस्तु है जब वे निष्क्रिय है, सृष्टि स्थिति, प्रलय का कोई काम नहीं करते। यह बात जब सोचता हूँ तब उन्हें ब्रह्म कहता हूँ जब वे सब काम करते है तब उन्हें काली कहता हूँ। शक्ति कहता हूँ, भेद सिर्फ नाम और रूप में है। सृष्टि के बाद आद्या शक्ति संसार के भीतर ही रहती है, वह संसार-प्रसव करती है, फिर संसार के भीतर रहती है, 'ईश्वर संसार का आधार, आधेय दोनों है।'

ब्रह्म सम्बन्धी उपरोक्त चर्चा स्पष्टतः 'उपनिषद्-दर्शन' में वर्णित ब्रह्म सम्बन्धी कल्पना के नितान्त अनुरूप है। आत्मा के अमृतत्व की चर्चा करते हुए उन्होंने कहा - "देह नश्वर है, नहीं रहेगी, देह के भीतर जो देही है, वह अविनाशी है"। ब्रह्म और आत्मा के बीच अभेद की स्थापना करते हुए उन्होंने कहा - जिन्हें ज्ञानी ब्रह्म कहते हैं योगी उन्हें आत्मा कहते हैं और भक्त उन्हें भगवान कहते हैं। वस्तु एक ही है केवल नाम का भेद है।

उन्होंने संसार की नित्यता पर भी विश्वास किया है वे शंकर की भाँति संसार को ब्रह्म का विवर्त कहकर नहीं उड़ाते। उनके संसार, माया, विद्या-अविद्या - सम्बन्धी अनुभव उपनिषदों के ही अनुरूप है। उन्होंने मानव जीवन का उद्देश्य ईश्वर से प्यार करना बताया और उस तक पहुँचने के लिए सभी साधनों की उपयोगिता को स्वीकार किया। उनका कथन है कि ज्ञान योग भी सत्य है और

भक्ति पथ भी सत्य है, सभी रास्तों से ईश्वर के समीप जाया जा सकता है। ईश्वर जब तक जीवों में 'मैं' बोध रखता है, तब तक शक्ति पथ ही सरल है। साथ ही ईशोपनिषद् और गीता के संदेश को पुन: वाणी देते हुए कर्मों के निष्काम भावना की महत्ता का भी प्रतिपादन किया और कहा -- मैं कर्त्ता हूँ - इस भाव को छोड़कर निष्काम भाव से कर्म कर सको तो और भी अच्छा है, निष्काम कर्म करने जाओ तो ईश्वर लाभ भी होगा। चित्त की शुद्धि होगी, फल ईश्वर को समर्पित कर देना चाहिए। मुक्ति के सम्बन्ध में भी उनके विचार उपनिषदों जैसे ही हैं - उनका कथन है कि ज्ञानी का उद्देश्य है वह स्वरूप को समझे, यही ज्ञानी है और इसे ही मुक्ति कहते हैं। पर ब्रह्म जो है, वे ही सब के स्वरूप है और मैं ब्रह्म दोनों एक ही समान यानी सत्ता है।

माया समझने नहीं देती। यह स्पष्ट अद्वैत दर्शन का ही प्रतिपादन है, रामकृष्ण परमहंस के उपरोक्त वचनों से स्पष्ट है कि उन्होंने सुदूर अतीत से अद्य: पर्यन्त हिन्दू-धर्म और दर्शन की सभी मौलिक मान्यताओं और विश्वासों को न केवल आत्मसात ही कर लिया था प्रत्युत उन सबकी उपयोगिता और सत्यता का मधुमती भूमिका पर साक्षात्कार लाभ भी किया था।

अत: वे भारतीय धर्म और दर्शन की जीती-जागती प्रतिमा थे। उन्होंने अपनी साधना से कालक्षेप से निष्प्राण हिन्दू-धर्म में पुन: संजीवनी का संचार कर उसे प्राणवान, सशक्त ऊर्ध्वमुखी और गतिशील बनाने में सहयोग दिया। इस प्रकार 'रामकृष्ण परमहंस' ने अपने अनुभवों से हिन्दू-धर्म और संस्कृति के पुनरूत्थान में एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा की।

वे स्वयं एक उच्च कोटि के भक्त थे - योगी और ज्ञानी थे। अद्वैत विचारधारा के अनुसार निस्सीम निराकार ब्रह्म ही अंतिम और वास्तविक सत्ता है। भावात्मक दिखाने के लिए सच्चिदानन्द का स्वरूप है, देह, मन बुद्धि और अहंकार का सारा प्रसार अविद्या-मायाजन्य है, सम्यक् ज्ञान की उपलब्धि द्वारा जब इस अविद्या का परिहार हो जाता है, तब देशकाल की सीमाएँ टूटने लगती है, शेष रह जाता है, अखण्ड निर्वैयक्तिक ब्रह्म। इस स्तर पर पहुँचने पर ज्ञानयोगी अद्वयी एकता का अनुभव कराता है, यह निर्विकल्प समाधि की स्थिति है जिसे ब्रह्म साक्षात्कार भी कहते हैं।

रामकृष्ण परमहंस के जीवन-वृतांत में निर्विकल्प समाधि के अनेक विवरण मिलते हैं। इस स्थिति में जीवात्मा का अहम् घुलकर अपना स्वतन्त्र अस्तित्व खो देता है, द्वैत का भाव नष्ट हो जाता है और ब्रह्मनिष्ठ साधक शब्द और विचार के परे पहुँचकर ब्रह्म की प्राप्ति करता है। उन्होंने अपने जीवन में वह स्थिति प्राप्त की और तत्सम्बन्धी अनुभवों के अनेक रोमांचकारी वर्णन अपने वचनामृतों में दिये हैं। सत्य का ऐसा साक्षात द्रष्टा ही ब्रह्म अथवा धर्म को महानता प्रदान करता है। उनके निकट सब उनके अपने हो जाते हैं। सारे भेद-भाव दूर हो जाते हैं, सब जीवों के प्रति आत्मभाव की प्रतिष्ठा हो जाने पर दया-करूणा-स्नेह आदि के उदात्त भाव उल्लसित होकर सर्वभूत-हित की भावना को प्रसरित करते हैं। रामकृष्ण परमहंस जी के जीवन में ये सभी स्थितियाँ घटित हुई है।

उन्होंने ज्ञान-भक्ति, विद्या-अविद्या, योग-कर्म, सन्यास-गार्हस्थ्य आदि का द्वन्द मिटाकर सर्वधर्म समन्वय का उदात्त स्वरूप प्रस्तुत किया और आध्यात्मवाद की आधारशिला पर मानव-मानव की एकता का जो सूत्र दिया यह पश्चिम के 'मानवतावाद' से अधिक महान वस्तु है।

"भारतीय संस्कृति के एक लम्बे इतिहास में परमहंस का जन्म एक महान भारतीय उपलब्धि है। जिनकी आत्मा की अपूर्व शिक्षा से सारा आध्यात्म-प्रदेश एक बार पुनः आलोकित और मंडित हो सका। वे अपने पीछे विवेकानंद और अन्य संन्यासियों के रूप में जिस आध्यात्मिक विरासत को छोड़ गए वह निधि भी कम महान नहीं है। रामकृष्ण मिशन द्वारा कुरीतियों और कुप्रथाओं का घोर खंडन हुआ। उन्होंने व्यापक मानवतावादी भावना का प्रसार करते हुए दरिद्र नारायण के प्रति हमारा ध्यान आकृष्ट किया। उन्होंने दीन दुखियों की सेवा करने का संदेश दिया। उनकी सर्वाधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि उन्होंने भौतिकवादी देशों को आत्मिक उन्नति का पाठ सिखाया और भारतवासियों को अपने धर्म के स्वस्थ तत्वों को ग्रहण करते हुए भौतिक प्रगति का संदेश दिया।"[(2)]

विवेकानंद ने रामकृष्ण मिशन की स्थापना कर अपनी दूरदर्शी सारग्राहिणी शक्ति द्वारा भारतीय सांस्कृतिक चेतना देते हुए सामाजिक सुधारों पर ध्यान दिया। उन्होंने विश्व संस्कृति और लोक हिताय को दृष्टि में रखकर राष्ट्रीय भूमिका के सुदृढ़ निर्माण में स्तुत्य योगदान दिया। विवेकानंद ने परमहंस रामकृष्ण के द्वारा अनुभूत जीवन सत्य को अपनी वाणी देकर विश्व भर में प्रसारित किया। यह उक्ति पूर्ण सत्य है कि 'रामकृष्ण परमहंस' और विवेकानंद एक ही जीवन के दो अंश, एक ही सत्य के दो पक्ष हैं।

"रामकृष्ण परमहंस अनुभूति थे, विवेकानंद उनकी व्याख्या बनकर आये। रामकृष्ण परमहंस दर्शन थे, विवेकानंद ने उनके क्रिया पक्ष का व्याख्यान अथवा आख्यान किया।"[(3)]

वास्तव में 'रामकृष्ण परमहंस' की वैयक्तिक ज्ञान साधना को विवेकानंद ने इस जगती पर एक उज्जवल धारा के रूप में प्रवाहित कर हमें नया आलोक दिया।

जिस समय महर्षि दयानन्द वैदिक धर्म की पताका उत्तर भारत में सर्वत्र फहरा रहे थे, उसी समय बंगाल में 'स्वामी रामकृष्ण परमहंस' अपने अपूर्व व्यक्तित्व और अनन्य भक्ति से शिक्षित वर्ग को प्रभावित कर रहे थे। वे अत्यन्त सहृदय, भावुक और पहुँचे हुए सन्त थे। आत्म साक्षात्कार के लिए उन्होंने ईसाई सन्तों और मुसलमान फकीरों तक का सत्संग किया था। अनेक वर्षों की साधना के उपरांत 'कलकत्ता' के निकट दक्षिणेश्वर में वे आश्रम बनाकर रहने लगे थे। उनके साधु जीवन में अपूर्व दैवी शक्ति थी। जो कोई उनके सम्पर्क में आता अत्यन्त प्रभावित होता। उनमें हिन्दू-धर्म और दर्शन के सभी रूप समाहित थे।

"धार्मिक कट्टरता और संकीर्णता से वे बिल्कुल परे थे। जिस किसी को उन्होंने देखा उस पर उनके व्यक्तित्व की अमिट छाप पड़ी और अनेकानेक जिन्होंने उन्हें कभी नहीं देखा था, उनकी जीवन-कथा से प्रभावित हुए। उन्होंने अपनी दुर्द्धर्ष साधना द्वारा यह प्रमाणित कर दिखाया कि संसार के सभी धर्म एक ही ईश्वर को प्राप्त करने के अलग-अलग मार्ग हैं। उनके महाप्रयाण के बाद उनके महामहिम शिष्य स्वामी विवेकानंद ने उनके उपदेशों का देश-विदेश में प्रबल प्रचार किया।"[(4)]

श्री रामकृष्ण का कहना था - जो राम रूप में आये थे, जो कृष्ण रूप में आये थे, वे ही इस बार इस शरीर में आये हैं....पर यहाँ हाँ इस बार छद्मवेश में आना हुआ है - जैसे जमींदार कभी-कभी वेश बदलकर अपनी जमींदारी देखने आता है। वैसा ही इस बार पूर्ण सात्विक भाव का

आविर्भाव है। यही कारण है कि श्रीरामकृष्ण परमहंस के भीतर सभी प्रकार के ऐश्वर्य नहीं दिखाई देते। वे निर्झर पुजारी के रूप में आये थे। न तो उन्होंने जटाजूट आदि धारण किया और न ही वे तपस्या करने हिमालय की गुफाओं में गये। बाहर से देखने में वे अत्यंत साधारण से थे उनका दैवी ऐश्वर्य पराभक्ति, पूर्णज्ञान, अपूर्व त्याग, ज्वलंत वैराग्य, विश्वव्यापी प्रेम के रूप में प्रकट हुआ। बचपन से ही श्रीरामकृष्ण परमहंस को विविध देवी-देवताओं के दर्शन हुआ करते थे। दर्शन के बाद वे दिव्य मूर्तियाँ उनके शरीर में ही विलीन हो जाया करती थी। श्रीरामकृष्ण भक्तों से कहते थे -- अरे नवाबी राज्य का सिक्का बादशाही राज्य में नहीं चलता। उन्होंने कहा कि मैं साँचा छोड़े जाता हूँ तुमलोग उसी साँचे में अपने आपको ढाल लेना। उनका सर्वांगपूर्ण आदर्श जीवन ही वह साँचा है। सीधे-टेढ़े पथों पर चलनेवाले विश्व विविध रूचियों के मनुष्यों के लिए, विभिन्न धर्मावलंबियों के लिए, विविध भाषा-भाषियों के लिए वे साँचा रख गए।

ईश्वर स्वयं ही मनुष्य के रूप में लीला करते हैं वे बड़े जादूगर हैं -- यह जीव-जगत् रूपी इंद्रजाल उन्हीं के जादू का खेल है। केवल जादूगर ही सत्य है और जादू मिथ्या।

मुक्ति कब होगी ? जब ''मैं'' चला जाएगा तब। ईश्वर ही सब कुछ रहे हैं। वे यंत्री मैं यंत्र हूँ - यह विश्वास यदि किसी में आ जाए तब तो वह जीवनमुक्त ही हो गया। हे प्रभु ! तुम्हारा कर्म तुम्ही करते हो, पर लोग कहते हैं कि मैं करता हूँ। ध्यान मन में, वन में या कोने में करना चाहिए। भगवान के प्रति किसी प्रकार का आकर्षण होना चाहिए। सती का पति की ओर, कृपण का धन की ओर तथा विषयी का विषय की ओर आकर्षण होता है, उतना भगवान के प्रति हो तो उनका लाभ होता है।

रामकुमार ने कलकत्ते के झामापुकुर मुहल्ले में एक संस्कृत पाठशाला खोली थी। पूजा-पाठ करने में वहाँ उनकी अच्छी ख्याति फैल गयी थी। बीच में वे घर भी आया करते थे। यह देखकर कि गदाधर ने पाठशाला जाना बंद कर दिया है। उन्हें अपने इस पितृहीन छोटे भाई के भविष्य के बारे में विशेष चिंता हुई। घर में रहकर उसकी पढ़ाई-लिखाई नहीं होगी। यह सोचकर उन्होंने अपनी माता के साथ सलाह-परामर्श किया और सत्रह वर्ष के गदाधर को अपनी पाठशाला में पढ़ने के लिए कलकता ले आये। वहाँ वे जिन घरों में पूजा किया करते थे उनमें उन्होंने गदाधर को ले जाया करते थे। थोड़े ही दिनों में इस सुन्दर किशोर के भावपूर्ण गायन-भक्ति पूर्ण पूजन और मधुर व्यवहार ने उस यजमान परिवारों में बहुत लोकप्रिय बना दिया। वे पढ़ने-लिखने में अब भी उदासीन थे।

संदर्भ -

1. छायावाद और वैदिक-दर्शन - डॉ0 प्रेमप्रकाश रस्तोगी, पृ0 123, 2. छायावादी काव्य की प्रगतिशील चेतना - डॉ0 संतोश कुमार तिवारी, पृ0 4, 3. छायावाद : काव्य तथा दर्शन - डॉ0 हरनारायण सिंह, पृ0 59, 4. श्रीरामकृष्ण संक्षिप्त जीवनी तथा उपदेश - स्वामी अपूर्वानन्द, पृ0 59, 5. श्रीरामकृष्ण संक्षिप्त जीवनी तथा उपदेश - स्वामी अपूर्वानन्द, पृ0 64

डॉ0 आलोक प्रभात, सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, संत जेवियर कॉलेज, राँची।
मो0-7004694183

✧ ✧ ✧

आलेख

'विनय पत्रिका' हिन्दी साहित्य का एक अनमोल ग्रंथ :

वंदना मिश्रा

इस ग्रंथ में गोस्वामी जी ने राम-कथा का गायन तो नहीं किया है, परन्तु इसमें उनकी काव्य-प्रवत्तियों का निचोड़ है। इसमें हमें भक्ति के चरमोत्कर्ष और काव्य सौष्ठव के श्रेष्ठतम् स्वरूप, के दर्शन होते हैं। संक्षेप में इस ग्रंथ की विशेषताएँ निम्नलिखित प्रकार है -

विनय पत्रिका तुलसी दास के 279 स्त्रोत गीतों का संग्रह है। प्रारंभ के 63 स्त्रोत और गीतों में गणेश, शिव, पार्वती, गंगा, यमुना, काशी, चित्रकूट, हनुमान, सीता और विष्णु के लिए एक विग्रह बिन्दु, माधव के गुणगान के साथ राम की स्तुतियाँ हैं। इस अंश में जितने भी देवी-देवताओं के संबंध के स्तोत्र और पद आते हैं सभी में उनका गुणगान करके उनसे राम की भक्ति की याचना की गयी है। इससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि तुलसीदास भले ही इन देवी-देवताओं में विश्वास रखते रहे हों, किन्तु इनकी उपयोगिता केवल तभी तक मानते थे, जब तक इनसे राम भक्ति की प्राप्ति में सहयोग मिल सके।

विनय पत्रिका भगवान की सेवा में भक्त द्वारा भेजी हुई पत्रिका है। इसका क्रम व शिष्टाचार वैसा ही है जैसा कि किसी दरबार में प्रस्तुत की जाने वाली, पत्रिका का होता है। इस क्रम निर्वाह में तुलसी को पूर्ण सफलता मिली है। इस पत्रिका को इस प्रकार रचा गया है कि वह जिसके पास पहुँचेगी, वही द्रवीभूत हो जाएगा। अतः इसका उपसंहार सर्वथा स्वाभाविक एवं आशाप्रद है। भगवान राम कलियुग के खिलाफ तुलसी की शिकायत सुन लेते हैं उनको उद्धार का आश्वासन दे देते हैं- ''मुदित माथ नावत बनी तुलसी अनाथ की, परी रघुनाथ हाथ सही है।'' (1) इस प्रकार विनय पत्रिका में यथाक्रम से रचित विषय वस्तु है।

विनय-पत्रिका में जीव कल्याण का

मार्ग प्रशस्त करने में कवि को पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है। इसमें कवि का लक्ष्य है- जीव को मार्ग दिखाना। इसमें गोस्वामी जीवन के दुखादि का वर्णन करते हैं, उनके निवारण के उपाय पर विचार करते हैं, विभिन्न विश्वासों और मतों का समन्वय करते हैं और अन्त में निष्कर्ष रूप में राम भक्ति का सरल सुन्दर पथ निर्दिष्ट करते हैं। इस सम्पूर्ण प्रयत्न में उनको पूर्ण सफलता प्राप्त होती है। यह ग्रंथ भक्तजन के हृदय का सर्वस्व है तथा तुलसी की अत्यन्त श्रेष्ठ रचना मानी जाती है। कतिपय भक्तजन तो इसे रामचरितमानस से भी अधिक श्रेष्ठ रचना कहने को तैयार हैं।

विनय-पत्रिका की श्रेष्ठता के कई कारण हैं।

इस ग्रंथ में गोस्वामी जी ने राम-कथा का गायन तो नहीं किया है, परन्तु इसमें उनकी काव्य-प्रवत्तियों का निचोड़ है। इसमें हमें भक्ति के चरमोत्कर्ष और काव्य सौष्ठव के श्रेष्ठतम् स्वरूप, के दर्शन होते हैं। संक्षेप में इस ग्रंथ की विशेषताएँ निम्नलिखित प्रकार है -

1. भक्ति का चरमोत्कर्ष- इस ग्रंथ में तुलसी ने अपनी राम-भक्ति का परिचय अनन्यतम रूप में दिया है। इसमें हम श्रुतिसम्मत और विरति-विवेक संयुत भक्ति की पूर्ण पद्धति का अनुसरण पाते हैं। इस ग्रंथ के प्रत्येक पद में हमको भक्त को निश्छल हृदय की झाँकी उपलब्ध होती है। प्रत्येक पद दास्य भाव, अनन्य भक्ति, पूर्ण निष्ठा, समर्पण-भावना तथा विनम्रता से आपूरित है। इसमें पग-पग पर हमको भक्ति का चरमोत्कर्ष दिखाई देता है।

2. इसके प्रत्येक पद में शांत रस का सागर लहरें लेता हुआ दिखाई देता है, जिसके किनारे खड़े होने वाले साधक का मन सर्वथा तृप्त हो जाता है।

3. हृदय की निश्च्छलता एवं भाव-गाम्भीर्य- 'विनय-पत्रिका' के प्रत्येक पद से तुलसी के हृदय की निश्छलता प्रवाहित होती हुई दिखाई देती है। गंभीर भक्ति भाव से पूरित हृदय से नि:सृत निर्मल भावों की मंदाकिनी का संस्पर्श प्राप्त करने के लिए सहृदय पाठक को विनय-पत्रिका रूपी भक्ति-सागर का दर्शन करना चाहिए।

   यथा- कबहुँ मन विश्राम न मान्यो, निसिदिन भ्रमत बिसारि सहज सुख।

   जहँ तहँ इन्द्रिन तान्यो, तुलसी दास कब तृषा जाय सर रवनतहि जनम सिरान्यो।।

4. संत स्वभाव की प्राप्ति पर बल-तुलसी सन्त स्वभाव को राम भक्ति का लक्षण मानते हैं। उनके मतानुसार सदाचरण ही जीवन का चरम लक्ष्य है। राम का प्रेम और धर्म का प्रेम एक ही बात है।

   उदा0 - जाके प्रिय न राम वैदेही

   तजिए ताहि कोटि बैरी सम, जद्यपित परम सनेही। (3)

5. आत्मालोचन पर बल- व्यक्ति का सुधार तभी संभव है जब वह आत्म-विकास के प्रति सदैव सजग रहे। आत्मा लोचन द्वारा आत्मविकास की प्रेरणा देने वाली पंक्तियाँ साधन जन के गले का हार है।

यथा0 – कैसे देउँ नाथहि खोरि।

काम–लोलुप भ्रमत मन हरि, भगति परिहरि तोरि। (4)

6. लोक–मंगल की भावना–गोस्वामी जी भक्त की साधना को लोक–मंगल की साधना का हेतु ही मानते थे। उनकी हरि–भक्ति दृश्यमान जगत के प्रति सेवा–भाव की पर्याय थी। विनय–पत्रिका यद्यपि आत्मभिव्यक्ति प्रधान काव्य है, तथापि वह लोक–मंगल की भावना द्वारा अनुप्राणित है–

यथा0 – राम जपु राम जपु राम जपु बावरे।

घोर भव नीर–निधि नाम जिन बावरे।

एक ही साधन सब रिद्धि–सिद्धि साधिरे।

ग्रसे कलि रोग–लोग संजम समाधि रे। (5)

लोक–मंगल का तत्व 'विनय–पत्रिका' को 'रामचरित' की कोटि की साधनावस्था का ग्रंथ बना देता है।

7. युग जीवन की मार्मिक अभिव्यक्ति–विनय–पत्रिका की रचना यद्यपि एक भक्ति ग्रंथ के रूप में हुई है, तथापि उनमें तुलसी ने युग–जीवन की उपेक्षा नहीं की है।

8. दार्शनिक विचारों का समन्वय–'विनय–पत्रिका' वैष्णव भक्ति का सांगोपांग ग्रंथ है। भक्ति की सातवीं भूमिका 'विचारण' के अन्तर्गत दार्शनिक सिद्धान्तों का विवेचना किया जाता है। तुलसी ने भी ऐसा ही किया है, परन्तु बहुत ही मनोरम शैली में। उन्होंने दार्शनिक सिद्धांतों को बहुत ही संक्षेप में सुलझा कर रख दिया है।

कोउ कह सत्य कह कोऊ, जुगल प्रबल कोउ मानै।

तुलसिदास परिहरै तीन भ्रम, सो आपन पहिचानै।

काव्य और दर्शन का हृदय और मस्तिष्क का ऐसा सुखद समन्वय अन्यत्र दुर्लभ है। दार्शनिक सिद्धान्त को कवित्वपूर्ण शैली में प्रस्तुत करना 'विनय–पत्रिका' की बहुत बड़ी विशेषता है।

9. धार्मिक मत–मतान्तरों का निराकरण–जिस युग में कवि गोस्वामी तुलसीदास का आविर्भाव हुआ उस युग में अनेक धर्म और सम्प्रदाय फैले हुए थे और धर्म–भावना के साथ जन–जीवन का संबंध छूट गया था। एक सफल काव्य ग्रंथ की भाँति 'विनय–पत्रिका' की यह बहुत बड़ी विशेषता है कि उसमें उच्चकोटि की भावाभिव्यक्ति होने पर भी लोक की उपेक्षा नहीं हुई है। इस ग्रंथ में तुलसी ने गणेशजी से लेकर परब्रह्म रूप राम तक सभी प्रतुख देवताओं की स्तुति करके और सबसे राम भक्ति की याचना करके यह स्थापित कर दी कि मत–मतान्तरों को सामाजिक जीवन में स्थापना देना उचित नहीं, क्योंकि सबका उपास्य (देवताओं का भी) अन्ततः एक ही है। उन्होंने शिव और

शक्ति की वंदना की है और साथ ही उनसे राम-भक्ति का वर माँगा है।

मत मतान्तरों के इस निराकरण में इस निराकरण में तुलसी ने खंडन-मंडन की पद्धति का अवलम्बन करके भावात्मक ढंग से धार्मिक विश्वासों में, समरसता लाने की चेष्टा की है। इस प्रकार विनय-पत्रिका काव्य को जीवन से संबंधित करने में बहुत कुछ सफल हुई है।

10. काव्य और संगीत के मणिकांचन संयोग- विनय-पत्रिका की रचना संगीत शास्त्र के विभिन्न राग-रागियों में बंधे हुए गये पदों में हुई है। ये राम-रागनियाँ पद विशेष में अभिव्यक्त रस के अनुरूप है। काव्य और संगीत का यह मधुर समन्वय उनकी किसी अन्य कृति में उपलब्ध नहीं होती है। 'विनय-पत्रिका' का कोई भी ऐसा पद नहीं है जिसमें किसी राग-रागिनी विशेष का शास्त्रानुमोदित निर्वाह न पाया जाता हो। फिर इसके ऊपर है पदों में अविच्छिन्न रूप से व्याप्त तुलसी के भक्त हृदय की भावुकता। इन कारणों से 'विनय-पत्रिका' भावुक भक्तों सहृदय पाठकों एवं गुणग्राही संगीतज्ञों के गले का समान रूप से हार बनी हुई है।

उदा0 - जाउँ कहाँ तजि चरन तुम्हारे।

काको नाम, पतित-पावन जग, केहि अति दीन पियारे। (6)

निष्कर्षत - यह कहा जा सकता है कि काव्य-कला की दृष्टि से 'विनय-पत्रिका तुलसीदास की सर्वश्रेष्ठ रचना है। गोस्वामी जी यदि केवल विनय पत्रिका ही लिखते तब भी वे हिन्दी के मूर्धन्य कवियों में शीर्ष स्थान के अधिकारी होते। यह काव्य रसिको संगीत-प्रेमियों भावुक भक्तों और 'दर्शन' शास्त्र के पंडितों का समान रूप से कंठ हार बनी हुई है।

संदर्भ ग्रंथों की सूची :

1. विनय पत्रिका-पद संख्या - 279
2. उपरिवत् - पद संख्या - 88
3. उपरिवत् - पद संख्या - 184
4. उपरिवत् - पद संख्या - 158
5. उपरिवत् - पद संख्या - 66
6. उपरिवत् - पद संख्या - 101

वंदना मिश्रा, हिन्दी शिक्षिका, डी0ए0वी0 पब्लिक स्कूल, बी0एस0ई0बी0 कॉलोनी, पटना।

✧ ✧ ✧

मन्त्र विद्ध

संदीप जायसवाल

शहर का कुख्यात अपराधी
गया एक दिन तांत्रिक के पास
कहा, धरपकड़ का खतरा बहुत बढ़ गया है
कुछ ऐसा करो छू भी न सके
मुझे भय की एक रेखा
जरा देर विचार मग्न हो कहा तांत्रिक ने
रुको देता हूँ एक ताबीज
मंत्रविद्ध करके
होठों से उच्चारते हुए लिखे उसने
तामपत्र पर कुछ अक्षर
और उसकी ताबीज बना कर
डाल दी हत्यारे के गले में
इसे सदा पहन कर रखना
अब तुम अजेय हो, सुरक्षित हो, जाओ।
तब से खतरा पीछे छूटने लगा
वह बेखौफ होता जा रहा था
विस्मित हो एक दिन हत्यारे ने
खोला उस ताबीज को
कि आखिर कौन सा मन्त्र लिख था
उस तांत्रिक ने जरा देखूं
देखा सुनहरे अक्षरों में लिखा था
नैतिकता, पवित्रता, संस्कृति, परम्परा, भक्ति ...
सा कुछ
चमक उठी हत्यारे की आँखे
माथे से लगा लिया उस मन्त्र विद्ध ताबीज को
ओह अब मै निर्भय हूँ ..सुरक्षित ..संरक्षित ...

✧ ✧ ✧

डॉ. दयाकृष्ण विजय के काव्य में समन्वयवाद

डॉ. यदुवीर सिंह खिरवार

मानव संस्कृति के आधाार पर जिस समन्वयवाद की भावना का प्रचार सम्पूर्ण भारतीय जीवन में दिखायी देता है उसका विशद उल्लेख डा0 दयाकृज़्ण विजय के काव्य में देखने को मिलता है। वस्तुतः भारतीय संस्कृति समन्वय प्रधाान है। यहां पर अनेक परस्पर विरोधिानी साधानाएं संस्कृतियों जातियों, आचार निरूपण और विचार प)तियॉं प्रचलित है, किन्तु समय-समय पर अवतीर्ण महात्माओं एवं महापुरुज़ों ने सदैव समन्वयक स्थापित करने का प्रयत्न किया है। गीता में समन्वय की भावना का उल्लेख हुआ है वहीं तुलसी भी समन्वयवादी थे।

आधुनिक हिन्दी कविता की पृष्ठभूमि पर दृष्टिपात करने से ज्ञात होता है कि इस काल में कविता का विपुल सृजन हुआ है। इस काल में कविता सृजन की श्रीवृद्धि में जयशंकर प्रसाद, निराला, महादेवी वर्मा एवं सुमित्रनन्दन पंत आदि जैसे अनेक कवियों का अभूतपूर्व योगदान रहा है। इन्हीं कवियों के समकालीन माने जाते हैं- कवि डॉ दयाकृष्ण विजय। वस्तुतः राजस्थान में जन्में डॉ0 विजय ने पन्द्रह वर्ष की अल्पायु में ही तुलसी जयन्ती के अवसर पर अपनी पहली कविता समस्या पूर्ति कहलायेंगे का सस्वर वाचन किया। इसके उपरान्त आपकी काव्य सृजन की यात्रा अनवरत प्रारम्भ हुई। आंजनेय महाकाव्य, कार्तिकेय खण्डकाव्य, राम की बहुरिया व आंतरिका गीतकाव्य, मेरे भारत मेरे देश, श्रमधरा, श्वेत शिखरों पर धूप बिम्ब एवं इन्द्र धनुष का आठवां रंग आदि कविता संग्रह की रचना कर काव्य की श्रीवृद्धि एवं विकास में सराहनीय योगदान दिया है। इस संदर्भ में रामानंद तिवारी का कथन है-''भरत उर्मिला आदि पर लिखे गये रामकथा-काव्यों की श्रंखला में आंजनेय एक उज्ज्वल मणि के समान स्थान ग्रहण करेगा। व्यवस्थित कथावृत, नाटकीय परियोजना, पवित्र भाषा, प्रांजल शैली, विचार-गरिमा, नैतिक निधि, रसविभूति, सांस्कृतिक मूल्य, राष्ट्रीय भावना, धार्मिक आस्था आदि अनेक महाकाव्योचित महिमाओं से मंडित 'आंजनेय' एक विशिष्ट महाकाव्य है। इस प्रकार डॉ. विजय का सर्जनात्मक व्यक्तित्व आज कोई परिचय का मोहताज नहीं है।

मानव संस्कृति के आधार पर जिस समन्वयवाद की भावना का प्रचार सम्पूर्ण भारतीय जीवन में दिखायी देता है उसका विशद उल्लेख डा0 दयाकृष्ण विजय के काव्य में देखने को मिलता है। वस्तुतः भारतीय संस्कृति समन्वय प्रधान है। यहां पर अनेक परस्पर विरोधिनी साधनाएं संस्कृतियों जातियों, आचार निरूपण और विचार पद्धतियॉ प्रचलित है, किन्तु समय-समय पर अवतीर्ण महात्माओं एवं महापुरुषों ने सदैव समन्वयक स्थापित करने का प्रयत्न किया है। गीता में समन्वय की भावना का उल्लेख हुआ है वहीं तुलसी भी समन्वयवादी थे। इतना ही नहीं यहां की वर्ण व्यवस्था, दर्शनिक विचार धारा, उपासना पद्धति, रुचि-मान्यता आदि में सर्वत्र भोग और त्याग, प्रवृत्ति और निवृति, ज्ञान और भक्ति, भौतिकता और आध्यात्मिकता आदि का समन्वय मिलता है। अस्तु समन्वय की भावना भारतीय संस्कृति का प्रमुख अंग है। दार्शनिक हीगल के अनुसार सृष्टि के संपूर्ण क्रियाओं के मूल में परस्पर दो विरोधी तत्वों का संघर्ष तत्पश्चात समन्वय है। डा0 विजय ने इस कथन के संदर्भ में अपनी स्वीकृति इस प्रकार प्रस्तुत की है-''द्वंद्वके संवेग के गुम्फित जगत के अंश पर। शान्ति निलयम है नहीं वायव्य या नैऋत्य में। दादा धर्माधिकारी ने समन्वय की व्याख्या करते हुए लिखा है कि भेदों में जो विषमता या विरोध हो, उसके परिहार का नाम समन्वय है। अविरोध-सिद्धि अर्थात् विविधताओं में विषमता के अंश का निराकरण ही समन्वय की पद्धति का सार है। समन्वय का अर्थ ''समझौता नहीं है। वस्तुतः समझौता एक बाह्य एवं यांत्रिक प्रक्रिया है उसमें आदान-प्रदान है। हम कुछ इश्ट अंश का त्याग करके कुछ अनिश्ट अंश को स्वीकार करते हैं। इसमें दोनों पक्षों का समाधान नहीं होता। एक अंश में दोनों को संतोष होता है और एक अंश में दोनों का असंतोष। समान असंतोष के साथ-साथ समान असंतोष होता है। अर्ध सम्मति के साथ अर्ध-असम्मति भी होती है, इसमें संगति और संवाद नहीं है। इसमें समान अन्वय नहीं है। समन्वय में विसंगति और विप्रतिपत्ति का परिहार है। इसलिए इसमें समान सम्मति और समान संतोष है। वस्तुतः भारतीय चिंतन प्रणाली का अनुशरण करते हुए डॉ. विजय ने भी अपने काव्य में समन्वय स्थापित करने का प्रयत्न किया है। इसी कारण यहाँ ऐहिकता और आध्यात्मिकता, इच्छा, ज्ञान, क्रिया, प्रवृत्ति और निवृत्ति था भोग और त्याग, बुद्धि और हृदय, शैव व वैष्णव, गृहस्थ और वैराग्य, भक्ति और ज्ञान, श्रेय और प्रेय, जड़ और चेतन, भले और बुरे, ईश्वर और जगत आदि का समन्वय मिलता है। इतना ही नहीं डा0 विजय के काव्य में ऐहिकता और आध्यात्मिकता का भी सफल समन्वय मिलता है। उनका मानना है कि जीवन में भौतिकता की प्रवलता के कारण ऐहिक जीवन के प्रति अगाध मोह दिखायी देता है, किन्तु यही अगाध मोह की स्थिति जब अन्तिम अवस्थाओं में भंग होती है तो वह आध्यात्मिक जीवन को महत्व देने लगती है। इससे स्पष्ट है कि मानव जीवन में न तो घोर विलासिता पूर्ण या सतत वासनामय ऐहिक जीवन व्यतीत करना ही श्रेयस्कर है और न वैराग्य धारण करके केवल आध्यात्मिकता पूर्ण जीवन व्यतीत करना ही उचित है, अपितु दोनों के सफल समन्वय से ही मानव जीवन कल्याण मय होता है-'' भौतिक अलक जाल मे उलझा...... ज्ञान योग के बिना जगत में कहॉ पराजय इसने मानी। इस प्रकार डा0 विजय के काव्य में ऐहिकता और आध्यात्मिकता के समन्वय का निरूपण हुआ हैं। अस्तु दोनों का सफ़ल समन्वय ही मानव जीवन में कल्याणकारी सिद्ध होता है।

मानव देव देव मानव बनने को व्याकुल
हर कोई अपने से अभिनव बनने को व्याकुल ।

भारतीय संस्कृति में प्रवृत्ति-निवृत्ति के समन्वय को भी अधिक महत्व दिया गया है। यहाँ प्रवृत्ति मार्ग और निवृत्ति मार्ग ब्रहमचर्य के दो अंश बतलाये गये है। प्रवृत्ति मार्ग में मनुष्य भगवान के विमुख रहता है और निरन्तर योग में लीन रहकर जीवन व्यतीत करता है। जबकि निवृत्ति मार्ग में वह भगवान के सम्मुख रहता है और त्यागमय जीवन व्यतीत करता है। इसे यों भी कहा जा सकता है कि प्रवृत्ति मार्ग में जीव आदान से समृद्ध होता है, किन्तु जीवन की सफलता दोनों के समन्वय में ही है-

आत्म भाव की है मानवता, आत्म भाव ही ज्ञान
देख रहे जो कुछ दुखात्मक, सब भौतिक विज्ञान ।

इतना ही नहीं भारतीय संस्कृति में धर्म का प्रवाह कर्म ज्ञान व भक्ति इन तीनों धाराओं में चलता है। इन तीनों के सामंजस्य से धर्म सजीव दशा में रहता हैं। तीसरी धारा भक्ति की दो शाखाएँ मानी जाती हैं- निर्गुण और सगुण। जहाँ निराकार अव्यक्त अविनाशी अजर अमर ब्रहम को उपास्य मान कर उपासना की जाती है वह निर्गुण भक्ति कही जाती है तथा जहाँ निर्गुण ब्रह्म के किसी अवतारी रूप की उपासना की जाती है, वहाँ सगुण भक्ति मानी जाती है। डा0 विजय ने अपने काव्य में सगुण और निर्गुण के समन्वय को प्रतिपादित किया है। जो कि इस प्रकार है-''निराकार साकार, एक ही सिक्के के दो पहलु हैं, एक असृजित, तो दूसरा सृजित।

डा0 विजय ने यहाँ निराकार और साकार को एक ही सिक्के के दो पहलु बताया है। उनका मानना है कि ईश्वर जहाँ निराकार है वही उसका साकार रूप भी दृष्टिगत होता है। इस प्रकार यहाँ सगुण और निर्गुण के समन्वय को प्रतिपादित किया गया है- ''जहाँ श्री महावीर हनुमान/ सिद्धि में वहाँ नहीं संदेह/ खुले दृग देख चुका हूँ रूप /सगुण भी निर्गुण दिव्य विदेह। इस प्रकार डा0 विजय के उपास्य देव हनुमान हैं। वे सगुण रूप लेकर संतों भक्तों की रक्षा करते हैं, लेकिन हनुमान मूल रूप में निर्गुण ब्रह्म हैं जो सगुण रूप में व्यक्त हुए हैं। उनके दोनों रूपों का समन्वय आंजनेय महाकाव्य में देखा जा सकता है। इसी प्रकार डॉ0 विजय में काव्य में जहाँ प्रवृत्ति और निवृत्ति का समन्वय किया गया है, वहीं पर ग्रहस्थ जीवन और वैराग्य के समन्वय का भी प्रयत्न देखने को मिलता है। कबीर ने जिस प्रकार ''गृही में वैराग्य''कह कर ग्रहस्थ और वैराग्य का समन्वय किया था। उसी प्रकार डॉ. विजय ने भी तपस्या एवं साधन में लीन व्यक्ति को अन्त में गृहस्थी के रूप में चित्रित किया है- शमशानी हुआ था सद् ग्रहस्थ/सद् गहस्थ शमशानी बन गये/एक अच्छे पिता।

श्रमण संस्कृति द्वारा ग्रहस्थ जीवन के त्याग में सृष्टि की परम्परा का विघान तो निहित है ही उन सब मानवीय मूल्यों से परांग मुक्त भी उसमें निहित है। जिसका ग्रहस्थ जीवन में उद्भव और विकास होता है। माता सत्यवती के पुत्र कृष्ण द्वैपायन के माध्यम से क्षमा नहीं करोगी शकुन्तला में इस प्रकार वर्णन किया है-संस्कृति की थाती /निधि है तात्विक ज्ञान की पुनीत। गृही

रहकर ग्रहस्थ जीवन का निर्वाह करते हुए भी चित्त में सन्यास अथवा अनासक्त भाव धारण किये हुए रहना । वस्तुतः यही भारतीय जीवन दर्शन नवगीत है। उपनिषद् में तेन त्यक्तेन भंजी था के द्वारा संकेत किया गया है और गीता में पदम पत्र मिवाम्वरा के द्वारा यही आदर्श ध्वनित हुआ है जो कि डा0 विजय कृत कार्तिकेय में इस प्रकार देखा जा सकता है- भौतिकता की सहजानुभूति है ग्रार्हस्थ.. .....प्यार भरे वात्सल्य के सुखद निबन्धों का। डॉ. विजय हनुमान शिव भक्त हैं। भक्ति का प्रभव उनके हृदय कर गहरा था। उनका मानना है कि संतप्त प्राणी के लिए भगवान की शक्ति ही एक मात्र अवलम्ब है-ज्ञान भक्ति के बिना अधूरा.......संयोजन ही वैदिक साम्य। परमात्मा की प्राप्ति के लिए ज्ञान और भक्ति दो प्रधान साधन माने गये हैं। वस्तुतः उन दोनों में से एक की अपेक्षा दूसरे की श्रेष्ठता के संबंध में आध्यात्मिकों, दाशनिकों तथा भक्तों के बीच दीर्घकाल से विवाद रहता आया है। कभी ज्ञान को चरम साध्य कहकर भक्ति को उसका साधक माना जाता है और कभी भक्ति को चरम साध्य कह कर ज्ञान को उसका साधक मान लिया जाता है, परन्तु डा0 विजय ने आंजनेय में माध्यम से दोनों के समन्वय के द्वारा ही परम ब्रह्म की प्रतिष्ठा करने की चेष्टा की है। इनके सन्दर्भ में कठोपनिषद् में कहा गया है कि आनन्द स्वरूप पर ब्रहम की प्राप्ति के साधन को श्रेय तथा स्त्री, पुत्र, धन, यश और लैकिक सुख योग की प्राप्ति के उपाय को प्रेम कहते है। श्रेय आरम्भ में कटु एवं अन्त में सुखद होता है तथा प्रेय आरम्भ में सुखद एवं अन्त में कटु होता है। अतः श्रेय का संबंध आध्यात्मिकता में है तथा प्रेय का सम्बन्ध भौतिकता से है। डा0 विजय ने अपने काव्य की विषय वस्तु में न तो केवल भौतिकता को ही महत्व दिया है और न ही आग्रह किया है कि सभी लोग संसार को छोड़कर जंगल में तपस्या करने लगे, अपितु दोनों अतियों का समन्वय करके यह स्पष्ट किया है कि जीवन में भौतिकता एवं आध्यात्मिकता को संतुलित रूप में अपनाना चाहिए। अतः इसी विकार के साथ डा0 विजय ने श्रेय एवं प्रेय का सफला पूर्वक समन्वय स्थापित करने की चेष्टा की है- पृथवी का पर्यावरण रखा/यज्ञों ने शुद्ध पवित्र सदा /रेखांकित इनके पद तल में /नि:श्रेयस प्रयस चित्र सदा। डा0 विजय ने जीवन में भौतिकता एवं आध्यात्मिकता को संतुलित रूप आत्मसात् करने पर बल दिया गया है-संस्कृति से सटेपन का अहसास। डा0 विजय ने श्रेय एवं प्रेय का सफल समन्वय स्थापित करते हुए मानव जीवन में इसके महत्व को प्रतिपादित किया है। ऐसा भी माना जाता है कि इस सृष्टि में सर्वत्र एक चेतन तत्व ही समाया हुआ है और उसी की सदैव प्रधानता है। केवल स्थूल दृष्टि वालों को जड़त्व का आभास होता है। आंजनेय महाकाव्य में जड़ और चेतन में कोई भेद नहीं किया गया है पेड़ हरा भरा रहता है तो चेतन है और जब उसे काट कर जला दिया जाता है तो उसकी राख जड़ रूप धारण कर लेती है। वस्तुतः संपूर्ण सृष्टि में दो तत्वों की प्रधानता देखी जा सकती है-जड़ और चेतन। डा0 विजय ने जड़ और चेतन का समन्वय इस प्रकार स्पष्ट किया है-सब एक ब्रह्म से अनुप्राणित/जड़ -चेतन केवल नाम भेद/यह स्पष्ट निदेशन संत वेद। डा0 विजय का मानना है कि जड़ और चेतन में भेद नहीं किया जा सकता है, क्योंकि सब

एक ब्रह्म से अनुप्राणित हैं तथा जड़ -चेतन तो केवल नाम भेद ही कहे जा सकते हैं। इस सन्दर्भ में वेदादि की भी यही मान्यता रही है। इस प्रकार कवि ने जड और चेतन के समन्वय को सफल रूप में अभिव्यंजित किया है- जड़ की आत्मा.....जीवन में अध्यात्म-चेतना/संसृति का अंतिम सोपान/संयम, तप, समाधि, शोधित तन/हॅसता चिन्मय पुरुष पुराण। इसी प्रकार महाकवि डा0 विजय ने जड़ और चेतन की विभेदात्मक स्थिति को समाप्त कर उसके समन्वय को सफल रूप में अभिव्यक्त किया है- वस्तु भोक्ता नहीं होती/जड़ में चेतन की प्रतीति का हेतु /बाह्येद्रिया नहीं/आत्म से आभासित अंत: करण ही है। भारतीय चिंतन पद्धति के अनुसार वह जात नियन्ता जगत के अणु-अणु और कण-कण में व्याप्त होकर इस जगत का संचालन करता रहता है। अत: ईश्वर और जगत परस्पर भिन्न नहीं है, अपितु पूर्णतया अभिन्न है-मन का सह ग्रन्थि बन्ध अविचल/जग सात्विक चातक प्यास है/संस्कृति के पृष्ठों पर मुदित /दो तन का निर्मल न्यास है। डा0 दयाकृष्ण विजय ने ईश्वर और जगत के भेद को पूर्णत: नकारते हुए उसे एक सिक्के के दो पहलु के रूप में प्रतिपादित किया है। कवि का मानना है कि ईश्वर ने ही जगत की रचना की है तथा वह जगत के कण कण में रमा हुआ है। इस प्रकार ईश्वर जगत में और जगत ईश्वर में रमा हुआ हैं दोनों एक होते हुए भी पृथक- पृथक दृष्टिगत होते है जब कि वास्तव में एक ही है। इस प्रकार यहॉ ईश्वर और जगत के समन्वय की अभिव्यंजना हुई है। डा0 विजय के काव्य में संस्कृति और प्रकृति का समन्वय इस प्रकार हुआ है-संस्कृति प्रकृति राष्ट्र जीवन की /श्रेष्ठ कर्म की परम्परा है,/मूल्य निकष सिद्धान्त नीति का/गंधित जिससे वसुन्धरा है। निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि डॉ. विजय के समन्वयवाद में हमें एक ओर तो भारतीय चिंतन पद्धति का उदाहरण देखने को मिलता है वहीं दूसरी ओर कुछ मौलिक धारणाएँ भी दृष्टिगोचर होती हैं। जैसे- ऐहिकता और आध्यात्मिकता, प्रवृत्ति और निवृत्ति, ग्रहस्थ-वैराग्य, ईश्वर-जगत के समन्वय में आपने भारतीय चिंतन परम्परा का अनुशरण किया है। डा0 विजय के समन्वयवाद में सर्वत्र उनकी उदार भावना, देशानुराग, मानवता प्रेम, विश्वबन्धुत्व की भावना आदि के दर्शन होते हैं। इस प्रकार समन्वयवाद भौतिक जीवन की सभी उलझनों को सुलझाकर मानव के कल्याण का मार्ग प्रशस्त करके उसे कर्मशील, अध्यवसायी और मानवता का संदेश वाहक बनाने वाला है।

डॉ. यदुवीर सिंह खिरवार, हिन्दी विभाग, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, थानागाजी अलवर (राजस्थान)

✧ ✧ ✧

रचनाकारों से अनुरोध

- प्रेषित रचनाएँ मौलिक एवं अप्रकाशित होनी चाहिए।
- रचनाएँ ए-4 आकार के पेज पर टंकित होना चाहिए।
- रचना क्रुतिदेव 010 फॉन्ट में ही भेजें।
- रचना के साथ लेखक अपना संक्षिप्त जीवन परिचय तथा अपना एक पासपोर्ट आकार का फोटो भी भेजें।
- रचनाएँ किसी भी स्थिति में लौटाना संभव नहीं है। अत: रचनाकार रचना की एक प्रति अपने पास सुरक्षित रखें।
- रचनाएँ sahityayatra@gmail.com पर ही भेजें।
- ई-मेल भेजने के क्रम में विषय अवश्य लिखें।